जीवन युद्ध

[यू० पी० तथा सी० पी० के शिक्षा विभागों द्वारा
पुस्तकालय तथा इनाम के लिये स्वीकृति]

लेखक—
श्री देवकीनन्दन 'विभव' एम० ए० (शिकागो)

प्रकाशक
एस्० एस्० मेहता ऐण्ड ब्रदर्स
अध्यक्ष
प्राचीन कवि-माला कार्यालय
६३ सूतटोला, बनारस ।

[...ीय संस्करण]

मूल्य १॥)

मुद्रक—

पं० गिरिजाशंकर मेहता

मेहता फाइन आर्ट प्रेस, मूतटोला, बनारस।

प्रकाशक के दो शब्द

'जीवन-युद्ध' का तृतीय संस्करण छपा कर प्रकाशित करते हुए आज अत्यन्त आनन्द हो रहा है। इस पुस्तक को यू० पी० और सी० पी० के शिक्षा-विभागों ने अपने-अपने प्रांतों के वर्नाक्यूलर तथा ऐंग्लो वर्नाक्यूलर मिडिल, हाई तथा नारमल स्कूलों में इनाम तथा पुस्तकालयों के लिये मंजूर कर लिया है और साथ ही भारत के सभी देशी राजस्थानों ने भी उन्हीं की तरह इसको स्थान देने की कृपा की है।

शिक्षा-विभाग से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियों ने इस पुस्तक को वहुत ही आदर की दृष्टि से देखने की कृपा की है। उन्होंने प्रत्येक विद्यार्थी तथा नवयुवक आदि को इस पुस्तक को कंठाग्र कर लेने की सलाह तक दी है। इसके वारे में विशेष कुछ लिखना हम अनुचित समझते हैं। कागज़ के इस अभाव के युग में हम इस पुस्तक को किसी प्रकार से प्रकाशित करने को उद्यत हुए हैं।

आशा है पाठक इसे पूर्व की तरह ही अपनाकर हमारे उत्साह को वढ़ाने की कृपा करेंगे।

भवदीय—

मेहता बंधु

—— —

विषय-सूची

प्राक्कथन

हमारा जीवन एक युद्ध है, जिसके हर मोर्चे पर परिस्थितियों से मुकाबिला करना पड़ता है, पग-पग पर आँधी और तूफ़ान हमें हमारे विजय मार्ग से विचलित करते हुए दिखाई देते हैं यह युद्ध गर्भस्थिति के समय से मृत्यु तक चलता रहता है। एक वर्ष के बच्चे को देखो, वह उठकर चलने की कोशिश करता है गिर पड़ता है और फिर उठता है। यह क्या है? युद्ध! जो बालक और पृथ्वी की आकर्षणशक्ति में हो रहा है, कभी बालक विजयी होता है, तो कभी प्रकृति। इसी तरह आगे के जीवन में हम प्रत्येक मनुष्य को भोजन, वस्त्र यश, पदवी, प्रशंसा के लिये युद्ध करते हुए पाते हैं संसार की उन्नति इस युद्ध पर निर्भर है और हम इस युद्ध से ही अपने इस अस्तित्व को कायम रक्खे हुए हैं।

हम इस जीवन-युद्ध में विजयी किसे समझें? जिनके भाव और कर्म पवित्र हैं; जिन्होंने कभी दूसरे को धोखा देकर बड़े बनने की चेष्टा नहीं की है जिन्होंने कभी दूसरे को अपने स्वार्थ के लिये पैरों-तले नहीं कुचला है, वरन् दूसरों की उन्नति में सदैव सहायक ही रहे हैं; जिनका जीवन सदैव प्रफुल्लता, उत्साह, निर्बलों की रक्षा आदि में बीता है। परन्तु जो धन-कुबेर या रॉकफ़ेलर बनने में असमर्थ रहे हैं, क्या इन्हें जीवन-युद्ध में विजयी हुआ समझें, अथवा उन्हें जिन्होंने निरंतर दूसरों के मार्ग में दीवारें खड़ी की हैं, जो ग़रीबों की हड्डियों पर चढ़कर ऊँचे बने हैं, जिनके तहख़ाने सोने और चाँदी से भरे पड़े हैं, जिन्हें सरकार

से अनेक उपाधियाँ मिली हैं और जिनका नाम संसार की पुस्तकों और समाचार पत्रों में गूंजता है।

सच्ची और उच्च सफलता से नाम, पदवी, प्रशंसा तथा धन का कुछ भी सबंध नहीं है। धन प्राप्त करना वास्तव में बुरा नहीं है, परंतु लाख या करोड़ रुपया इकट्ठा कर लेने से ही किसी मनुष्य का जीवन सफल नहीं हो जाता। अनेक मनुष्य झोपड़ी में हो पैदा हुए और झोंपड़ो में ही मरे हैं, उनके शव को उठाने के लिये भीड़-की-भीड़ नहीं आई, परन्तु तब भी हम उनके जीवन को साहस-पूर्वक सफल कह सकते हैं वास्तव में यदि केवल भले ही मनुष्य सफल समझे जायं, तो इन अनेक धनी कहलानेवाले मनुष्यों को गिनती कहीं न रहे और अनेक मनुष्य जिनकी प्रशंसा संसार भर में फैली हुई है, असफलता की सूची में आ पड़ें। जो मनुष्य दया, प्रेम, उपकार आदि सद्गुणों को ठुकराकर दूसरों के रक्त से अपनी वाटिका को सींचते हैं, वे मानुषिक दृष्टि में बड़े और प्रशंसा के भाजन भले ही बन जायं, परंतु यदि उनके कार्यों का लेखा-जोखा लिया, तो फिर उन्हें कौन मान की दृष्टि से देखेगा? निस्संदेह वे उस मूर्ख के समान हैं, जिसने रत्नों से भरी हुई एक अत्यन्त सुन्दर चमकते हुए चमड़े की थैली पाने पर रत्नों को तो फेंक दिया हो और थैली सावधानी से रख ली हो! उन्होंने सच्ची संपत्ति, सच्चे सुख, सच्ची सफलता को लात मार, मृग तृष्णा के पीछे दौड़ लगाई है।

धन का परिणाम सफलता की श्रेणी का द्योतक नहीं है। यदि यह न होता, तो आज महाकवि कालिदास और शेक्सपियर, महर्षि वशिष्ठ और पादरी जॉन का गुणगान कौन करता? लोग त्याग और सेवा को भूल ही जाते? इस बात को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि भगवान् बुद्ध और प्रभु ईसा, जगद्गुरु शंकराचार्य और महात्मा लूथर, महात्मा गांधी और दीनबंधु लेनिन का जीवन अनेक कुबेरों और हेनरी फ़ोर्ड के जीवन से, वस्तुतः अधिक सफल हुआ है। इसलिये किसी करोड़पति को देखकर

ही यह न कह देना चाहिए कि इसका जीवन सफल हुआ है।

धन कमाना हमारा कर्तव्य है। इस नियम से तो केवल संन्यासी और विरक्त ही छुटकारा पा सकते हैं, परन्तु 'किसी भी साधन से' धन एकत्र कर रॉकफ़ेलर बनने की इच्छा बुरी है। आप दान, परोपकार और उचित व्यय के लिये यदि धन कमाना चाहते हैं, तो कोई भी मनुष्य आपको बुरा नहीं कहेगा। परन्तु गरीबों का रक्त चूसकर ऊंचा बननेवालों और अपनी आत्मा के ख़ून से अपने हाथों को रंगनेवालों को कौन विजयी और सफल कहेगा?

अच्छा! तो इस युद्ध में किसे विजयी समझें? साधारणतः हम उन्हीं को विजयी कह सकते हैं, जो स्वस्थ हैं, जिनका मस्तिष्क और शरीर मिलकर काम करता है, जिनका अंतःकरण संतुष्ट है, जिन्होंने कभी अपने अंतःकरण के विरुद्ध साधनों से धनी बनने की चेष्टा नहीं की है, जो अपने कर्तव्य से कभी पीछे नहीं हटे हैं, जिनका हृदय दया, प्रेम, स्वदेश-भक्ति, परोपकार आदि गुणों से पूरित रहा है, जो संसार पंक में असमर्थता के कारण फँस नहीं गए हैं, जिन्होंने ईश्वर का अनुभव किया है और उनपर विश्वास और भक्ति की है। यदि उसने इतना किया है, तो फिर चाहे उसे कठोर पृथ्वी पर सोने को मिलता हो अथवा उत्तम पलंग पर, साग-पात से ही निर्वाह करना पड़ता हो या दाल-भात खाकर, कहीं गुदड़ी में ही आयु बितानी पड़ती हो या दिव्य वस्त्र-धारण कर, यह विचार गौण है। महाराज भर्तृहरि कहते हैं--

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनम्।
क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः॥
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो।
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्॥

पहला मोर्चा

निर्णयशक्ति तथा दृढ़ता

प्रारभ्यते न खलु विघ्न भयेन नीचाः ।
प्रारभ्य विघ्न विहता विरमन्ति मध्याः ॥
विघ्नै पुनः पुनरपि प्रति हन्य मानाः ।
प्रारब्धमुत्तम जना न परित्यजन्ति ॥—भर्तृहरि

× × × ×

खोल दो पाल बढ़ा दो नाव,
वायु की गति भी है अनुकूल ।
शीघ्र ही पहुंचेंगे उस पार,
मिलेगा मनोनीत प्रिय कूल ॥

× × × ×

"तुरा के दस्त बलरज़द गुहर चे दानी सुफ़्त"—शेख़सादी

× × × ×

"मैं जिस काम को हाथ में लेता हूं, उसमें सूई की तरह गड़ जाता हूं।"
—बेन जॉनसन

× × × ×

हर काम को करने के पहले यह निश्चय करो कि वह काम उचित है, या नहीं। यदि वह करने योग्य है, तो दृढ़ता से उसमें लग जाओ

और जब एक बार लग जाओ, तो फिर कैसा ही संकट क्यों न आवे, उसे अधूरा कभी मत छोड़ो।

—लेखक

× × + ×

He either fears his fate too much,
Or his deserts are small,
That dares not put it to the touch,
To gain or lose it all.

—Marquis of montrose.

सहस्रों स्वस्थ, शिक्षित और योग्य नवयुवक अपनी जीवन-नौका पर संसार-सागर के पार हो जाने के लिये तट पर खड़े हैं। उनके पास सब साधन उपस्थित हैं, परंतु तो भी उनमें इतना साहस नहीं है कि वे लंगर उठाकर नौका को पानी में छोड़ दें। वे कभी वायु के झकोरों का स्मरण करते हैं तो कभी लहरों की थपेड़ों का—यदि आँधी उठी और तूफान आ गया, कहीं किसी चट्टान से टक्कर लग गई, नहीं तो किसी जल-जन्तु ने ही नौका पकड़ ली, तो फिर क्या होगा? फिर अथाह सागर के अगाध जल से कौन निकालेगा? यदि कोई निकाले भी तो उसे पता ही कहां लगेगा! उफ़! इस सागर में प्रवेश करना बड़ा भयप्रद है!

यदि वे किसी तरह अपनी नौका जल में छोड़ भी देते हैं, तो भी इस बात का ध्यान रखते हैं कि आवश्यकता पड़ने पर पीछे लौटने के सारे साधन उन्हें मिल सकें। वे फूंक फूंककर पैर बढ़ाते हैं और पानी की तनिक भी हलचल देखते ही लौट पड़ते हैं। यह अपकचाहट ही अनेक मनुष्यों के जीवन को सफल नहीं होने देती। यदि वे ही नवयुवक पीछे आने का विचार छोड़कर और अपनी तमाम शक्तियों को एकत्रित

कर वायु के झकोरों और लहरों को थपेड़ों से रोकने लगें, तो अवश्य ही वे पार हो जायं।

प्राय: अनेक मनुष्यों में निर्णय-शक्ति का अभाव-सा होता है। वे किसी बात पर अपना अंतिम निर्णय नहीं कर सकते। वे सोचते हैं कि आज उन्होंने कोई निर्णय कर लिया और कल कोई उससे भी अच्छी बात आ जाय, तो उन्हें अपने पिछले निर्णय पर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। वे निर्णय न करने की आदत के कीड़ों से अपने मस्तिष्क को नष्ट कर डालते हैं।

जो मनुष्य स्वयं अपने निर्णय पर आगे बढ़ना नहीं जानते, जो दूसरों के दिखाए हुए मार्ग पर ही चलते हैं और जिनके मस्तिष्क में सदैव दो विरोधी भाव झगड़ते रहते हैं, वे कभी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। जो व्यवसायी अपने निर्णय पर दृढ़ नहीं रहते, अंतिम समय भी झट उसे बदल देते हैं और पद पद पर शंकाशील रहते हैं; उनसे दूसरे सब लोग घबड़ाते हैं और उनके साथ काम करने में डरते हैं।

जो राष्ट्रों, देशों अथवा सेनाओं का नेतृत्व करते हैं उनमें अंतिम निर्णय करने की शक्ति होना आवश्यक है। उनमें चाहे किसी दूसरे गुण की कमी हो, परंतु वे तुरंत निर्णय करना जानते हैं। वे जानते हैं कि उनका ध्येय क्या है और वे सीधे उसी ओर बढ़ते हैं उनसे भूलें होती हैं; कदाचित वे गिर भी पड़ते हैं, परंतु फिर भी वे खड़े होकर सीधे उसी ओर चल देते हैं। जो सेना-नायक शीघ्र ही अंतिम निर्णय कर लेता है, वह सदैव अपने शत्रुओं को जा दबाता है, जो कि उस समय यही सोचते होते हैं कि अब क्या करना उचित है। फ्रांस के वीर नेपोलियन और हिंदू-सम्राट शिवाजी इसी गुण के कारण शत्रु की सेना अधिक संख्या में रहने पर भी आतंक जमा सके थे।

प्रत्येक नवयुवक को शीघ्र-से-शीघ्र अपना जीवन पथ निश्चय कर

लेना चाहिए। स्मरण रखिए, आज तक सफलता के लिये किसी स्वर्ण-पथ का निर्माण नहीं हुआ है। अपना पथ आप ही निर्माण किया जाता है। यदि आप यह ढूंढ़ते फिरेंगे कि आपको कोई ऐसा पथ मिल जाय, जहाँ पुष्प-शय्या बिछी हो, तो आप प्रलय तक खोजने पर भी ऐसा कोई पथ न पा सकेंगे; परन्तु यदि आप पुष्प एकत्रित कर किसी भी मार्ग पर उन्हें बिछाने में जुट जायँगे, तो निश्चय ही पुष्प-मार्ग पर चलने की आपकी साध पूरी हो जायगी। यदि आप जीवन-पथ पर चल देंगे तो एक दिन निश्चय ही उच्चतम श्रेणी पर पहुँच जायंगे।

निश्चय-शक्ति के साथ-साथ दृढ़ता भी परम आवश्यक है। जो जीवन-पथ पर चल तो दें, पर निराश होकर लौट आयें या थककर बैठ जावें, तो वे कैसे अपने ध्येय तक पहुंच सकेंगे, जो तूफ़ान, आँधी, विरोध किसी की भी चिंता न कर, आगे ही बढ़ते रहे, जो लोग अपने निश्चय पर चट्टान की तरह दृढ़ रहते हैं, उनसे कोई भी टकराने का साहस नहीं करता और सब उनकी बात को मान लेते हैं हिंदूपति शिवाजी और प्रणवीर राणाप्रताप ने यवनों का आधिपत्य अस्वीकार करने का निश्चय कर लिया! फिर पराजय, विपत्ति, भूख प्यास, बनवास कुछ भी उन्हें अपने निर्दिष्ट पथ से टस-से-मस न कर सके उनकी विजय निश्चित थी।

महात्मा गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका में नेटाल देश की सीमा-रेखा पर खड़े होकर अपने अनुयायियों से कहा—'जिनको कष्ट, दुर्दशा और कठिन कारागार का भय न हो, वे मेरे साथ आकर सीमा को पार करें और अन्यायी सरकार को दिखला दें कि हम उनके अन्यायपुक्त नियमों का उल्लंघन करने से नहीं घबड़ाते। हम उनका दृढ़ता से प्रतिरोध करेंगे, चाहे इसके लिये वे हमें कारागार ही क्यों न भेज दें'। यह कहकर वे स्वयं सीमा के पार चले गए और कई सौ और भी उनके साथ पार हो गए। वे लोग शीघ्र ही बंदी बनाकर कारागार में भेज दिए गए, परन्तु जब वे छूटकर आए, तो उन्होंने उन नियमों का पूर्ववत् फिर

दृढ़ता से प्रतिवाद किया। इन्हीं अपराधों के कारण महात्माजी बाईस बार वहाँ कारागार में भेजे गए और उन्होंने असीम कष्ट भी सहे, परन्तु उन्होंने उन नियमों का बार-बार प्रतिवाद किया; यहाँ तक कि अन्त में उनकी विजय हुई और वे नियम तोड़ दिए गए। भारतवर्ष में भी जब उन्होंने असहयोग आंदोलन चलाया, तो बहुत ही थोड़े आदमी उनके साथ थे और अनेक पुराने नेता उनका विरोध कर रहे थे परन्तु उन्होंने इसकी कुछ भी चिंता न की और वे नगर और ग्राम में अपना संदेशा सुनाने के लिये निकल ही पड़े। अन्त में सारे राष्ट्र को उसे स्वीकार करना ही पड़ा। महात्माजी के जीवन में अनेक स्थानों पर निर्णय और दृढ़ता के सजीव उदाहरण मिलते हैं।

हम प्रतिदिन संसार में देखते हैं, कि एक बहुत ही साधारण मनुष्य अनेक बहुगुण-संपन्न और विद्वान मनुष्यों से बाजी मार ले जाता है। हम आश्चर्य करते हैं जब कि उस विद्यार्थी को-जो दर्जे में सबसे रद्दी रहता है, जिसमें औरों से आधी भी योग्यता नहीं रहती, पर सफलता की दौड़ में उसे सबसे आगे निकलता हुआ देखते हैं। क्या इसका एक कारण भाग्य अथवा सुयोग ही है? कदापि नहीं। यदि हम स्थिति का ध्यानपूर्वक मनन करें, तो हमें ज्ञात हो जायगा कि हम प्रतिदिन नई नई बातें तो सोचा करते हैं, परन्तु हम किसी को भी कार्यरूप में लाने का निश्चय नहीं करते। हमने अपना अभी तक कोई मार्ग ही निश्चित नहीं किया है। हम नहीं जानते कि हमें संसार में क्या करना है? हम चारा और मृग-तृष्णा की भाँति दौड़ते-फिरते हैं हम एक कार्य को हाथ में लेते हैं, परन्तु किसी बाधा के आते ही उसे छोड़कर किसी दूसरे कार्य की ओर दौड़ पड़ते हैं। हम सोचते हैं, अमुक मनुष्य का काम बड़े फायदे का है, अमुक नए व्यवसाय से लखपती बन गया है, परन्तु हमारे काम में इतना विशेष लाभ नहीं है। अगर हम इस काम को छोड़कर उसी ओर चले जावें

तो कैसा? इसके विपरीत दूसरा मनुष्य जिस काम को अपने हाथ में ले लेता है, उसे समाप्त होने से पहले कभी नहीं छोड़ता। उसमें निर्णय-शक्ति और दृढ़ता है, परन्तु हममें हिचकिचाहट और शिथिलता है। इसीलिए उसकी विजय और हमारी पराजय होती है। बहुत-से मनुष्य योग्य नेता, लब्धप्रतिष्ठित लेखक, सफल संपादक, निपुण चित्रकार, श्रेष्ठ डाक्टर अथवा प्रथम श्रेणी के वकील बन जाते, परन्तु अनिश्चित और अस्थिर होने के कारण वे पीछे रह जाते हैं।

आपको अपने जीवन में जो कुछ करना है, उसका तुरन्त निर्णय कर लीजिए। एक बार अपने निर्णय को खूब तौल लीजिए, सारी युक्तियों को परख लीजिए, योग्यता भर देख-भाल कीजिए, परन्तु जब आप एक बार श्रीगणेश कर दें, तो कठिनाई, कष्ट, विरोध, आँधी, तूफ़ान सबको दृढ़ता से सहन करते हुए अपने ध्येय की ओर बढ़ने की चेष्टा कीजिए। फिर चाहे दूसरे मार्ग से सहज ही स्वर्ग मिलता हो, तो भी उस ओर जाने का विचार न कीजिए।
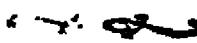
दूसरा मोर्चा

—*—

साहस तथा उद्योग

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यम समो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति॥

—महाराज भर्तृहरि

× × × ×

संकट देख सामने अपने कभी न कहना 'हाय',
धीरज धर के उसे झेलना साहस उर में लाय।
भग्न मनोरथ होकर भी तू श्रम करना मत छोड़,
सारी विषय वासनाओं से ले अपना मुख मोड़॥

—रामदयालु

× × × ×

हे अर्जुन! पहले के मोक्ष चाहनेवालों ने कर्म किए, इसलिए तुम भी कर्म करो।' —भगवान कृष्ण

× × × ×

मुश्किले नेस्त कि आसां न शवद।
मरद बायद कि परेशां न शवद॥

—शेख़ शादी

× × × ×

"A Sacred burden is the life ye bear;
Look on it, lift it, bear it solemnly;
Stand up and walk beneath it steadfastly,
Fail not for sorrow, falter not for sin,
But onward, upward, till the goal ye win,"

—Frances Anne Kemble.

नेपोलियन जब आस्ट्रेलिया पर चढ़ाई करने की तैयारी कर रहा था, तब उसके एक सेना-नायक ने आकर कहा—'सम्मुख आल्प्स पर्वत है और अब आगे बढ़ने का कोई साधन नहीं है।', इसपर नेपोलियन ने दृढ़ता से कहा—'वहाँ आल्प्स पर्वत ही न रहेंगे' और उसके आदेशानुसार कठिन अगम्य पर्वतों में-से एक सड़क बनाई गई। उसके विचार में 'असंभव' शब्द मूर्खों के कोष में पाया जाता है और उसके

इसे अपने कार्यों से प्रमाणित भी कर दिया। नेपोलियन के जीवन में हमें साहस और कठिन परिश्रम के अनेक ज्वलंत उदाहरण मिलते हैं। वाटरलू के युद्ध के पहिले अट्ठारह घंटे न उसने खाया था और न विश्राम ही किया था। उसके कपड़े मिट्टी और पानी में लथपथ हो गए थे, परंतु वह थकावट और ठंड की कुछ भी चिंता न कर अपने काम में बराबर डटा रहा। इसी नेपोलियन के कारण योरोप की बड़ी-बड़ी शक्तियाँ थरथराती थीं। इसी तरह एक पराजित हुए सेनापति ने सिकंदर से कहा—मुझसे यह न हो गा, यह बिलकुल असंभव है। विश्वविजेता ने उत्तर दिया—भाग जा, अभागा यहाँ से काला मुँह कर उद्योगी के लिये कुछ भी असंभव नहीं है।

मनुष्य को अपने दूसरे अनेक गुणों को काम में लाने के लिए साहस की आवश्यकता होती है। साहसहीन मनुष्य बहुगुण सम्पन्न होने पर भी कभी कोई महान् कार्य नहीं कर सकता। साहस बिना बलवान मनुष्य भी निर्बल से हार जाते हैं। कई मनुष्य एक नगर से अपने ग्राम को वापस जा रहे थे। मार्ग में तीन-चार डाकुओं ने लाठी से उनपर आक्रमण किया और जो कुछ उनके पास माल-मत्ता था, लेकर चलते बने। इसके बाद एक ने दूसरे से—जिसके पास पिस्तौल थी, पूछा—'तुमने डाकुओं पर गोली क्यों न चलाई?' उसने उत्तर दिया कि मैं उस समय इतना घबड़ा-सा गया था, कि मुझे उनकी याद ही न रही।

व्यवसायी मनुष्य का मुख्य गुण साहस है। उसके साहस की पग-पग पर परीक्षा होती है यदि वह साहसी है, तो वह अपने व्यवसाय को चौपट होते-होते बचा लेते हैं। हमें कठिनाइयों में आशावादी और दृढ़ तथा अपने व्यवहार में सत्यवादी और निश्छल होना चाहिए। हमें अपने सदाचार-बल पर विश्वासी होना चाहिए।

कर्मवीर लोकमत का अपने विरुद्ध भी परवाह नहीं करते। अनेक

मनुष्य कुछ विरोधियों के उत्पन्न होते ही घबड़ा उठते हैं और उस काम का छोड़ बैठते हैं। दूसरे तमाम संसार का साहस से सामना करते हुए भी अपने कार्य को पूरा करके ही छोड़ते हैं। अमेरिका को ढूंढ़ निकालनेवाले वीर कोलंबस ने जब संसार के सामने यह कहा कि पृथ्वी के गोल होने के कारण दूसरी ओर भी दुनियाँ होनी चाहिए, तब लोगों ने उसके मुँह पर ही उसकी खिल्ली उड़ाई, क्योंकि उस समय योरोप वाले पृथ्वी को नहीं, सपाट मानते थे—उसने इंग्लैंड, इटली, फ्रांस आदि देशों से सहायता मांगा, परंतु सब ने कोरा जवाब दिया। वह वीर उत्साह हीन न हुआ और अन्त में इस्पैन के राजा के सहायता से उसने अनेक कष्ट और यातनाओं को सहन कर नई दुनियाँ को ढूँढ़ निकाली।

भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का आठवाँ अधिवेशन जब प्रयाग में होनेवाला था, तब अकस्मात् पं० अयोध्यानाथ की मृत्यु हो गई। इसपर अनेक व्यक्तियों ने यह प्रस्ताव करना चाहा कि इस बात की सूचना दे दी जावे कि इस साल यहाँ कांग्रेस का अधिवेशन न हो सकेगा, परन्तु पंडित मदनमोहन मालवीय और दूसरे साहसी नेताओं ने निराशा की कोई बात नहीं सुनी और वह अधिवेशन सफलता-पूर्वक ही प्रयाग में हुआ।

रेल, तार, बिजली, सिनेमा आदि सब साहस के ही खेल हैं। यदि इनके आविष्कारकर्ताओं में साहस न होता, तो इस समय यह संसार और ही रूप में होता। अनेक मनुष्यों को नए-नए प्रयोग करते समय अपने प्राण झोंकने पड़े हैं और यदि उनके साथी साहसहीन होकर पीछे हट जाते, तो यह आविष्कार कभी हुए ही न होते। जार्ज स्टीफेन्सन डेवी, जिन्होंने खानवालों के व्यवहार के लिये सेफ्टी लैंप का आविष्कार किया था और अपने उक्त आविष्कार की परीक्षा के लिये एक खान में उतरे। उन्होंने उस स्थान की ओर प्रस्थान किया,

जिधर भभक उठनेवाली गैस का बहुत जमाव था। इसपर उनके तमाम मित्र वापस लौटकर दूरस्थित मकानों में चले गए परंतु मि० डेवी निधड़क ऐसे स्थान में चले जा रहे थे, जहाँ कदाचित् मृत्यु मुख फैलाए बैठी हुई थी, उन्होंने लैंप को उस ओर बढ़ा दिया, जिधर से गैस तेजी से निकल रही थी। उस समय उनका न तो हृदय धड़का और न हाथ ही काँपा। पहले तो लैंप की लौ कुछ बढ़ती हुई दिखाई दी इसके पश्चात् लौ हिलने लगी और फिर पूर्ववत् हो गई। अब उन्हें ज्ञात हुआ कि उन्होंने सफलता प्राप्त की है और उन्हें यह स्मरण कर प्रसन्नता हुई कि अब उनका आविष्कार अनेक मनुष्यों के प्राण बचाने का साधन होगा।

जीवन के प्रत्येक कठिन अवसर पर हमारी डगमगाती हुई नौका को, जो किनारे ला पटकता है, वह साहस है। साहस एक ऐसा गुण है, जिसके सामने कोई आपदा खड़ी हो नहीं रह सकती। एक साहसी आदमी को देखकर दूसरों में भी साहस का संचार होता है, परन्तु साथ ही एक कायर को देखकर दूसरों में भी भय आ घुसता है। यारोपीय महायुद्ध में अनेक अवसरों पर केवल कुछ भारतीय वीरों के साहस ने सारी सेना के प्राण ही नहीं बचाए, वरन् विजय भी प्राप्त की है। प्रायः युद्ध में जब कुछ आदमी भागने लगते हैं, तो उनके दूसरे साथियों का भी जी टूट जाता है।

यह प्रसिद्ध दंतकथा है की एक बार महाराजा रणजीतसिंह ने अपने सैनिकों को अंग्रेजों की तोपों की अग्निवर्षा से भागते देखकर अपना एक हाथ एक तोप के मुख में अड़ाकर गोलंदाज को गोला छोड़ने की आज्ञा दी, परंतु लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि प्रयत्न करने पर भी तोप न छूटी। तब महाराज ने कहा—हमारी मृत्यु का समय अभी नहीं आया है। इसी प्रकार यदि तुम्हारा अन्त समय नहीं आया है, तो तुम्हें कोई भी नहीं मार सकता और यदि आ गया है, तो तुम किसी

प्रकार अपने को बचा भी नहीं सकते। इसपर सब सैनिक रुक गए और अंगरेज़ी सेना से ख़ूब लोहा लिया।

एक बार दो पठानों ने महाराज रणजीतसिंह की हत्या करने का निश्चय कर, उनके दरबार में नौकरी की और बनावटी स्वामिभक्ति से वे महाराज को प्रसन्न भी करने लगे किसी प्रकार महाराज को उनकी दुराकांक्षा की ख़बर हो गई। परन्तु उन्हें इसका संदेह न होने दिया। एक दिन महाराज आखेट के लिये गए और इन्हें भी साथ लेते गए। बहुत दूर पहुंचने पर एकाएक महाराज ने घूम कर कहा—'मेरा गला घुटता है, अपनी कटार से मेरे बटन को काट दो' इसपर इन लोगों के हाथ-पैर काँपने लगे और उनके अस्त्र हाथों से छूट पड़े। तब महाराज ने सब भेद खोलकर कहा—'हम पहले ही से तुम्हारे इरादे को जानते थे, परन्तु हम अपने साहस के तेज का प्रभाव देखना चाहते थे और अब हमें वह मालूम हो गया' इसके उपरांत वे लोग सर्वदा के लिये उनके भक्त हो गए। यही साहस का तेज शत्रु को मित्र बना सकता है।

जब कोई छोटी-सी भी घटना हो जाती है, तो हम ऐसे भयभीत हो जाते हैं कि उस समय कोई काम हमारी समझ में नहीं आता। हम अपना सारा काम छोड़कर उसकी ही चिंता में लग जाते हैं। स्ट्रेलसन्द के घेरे के समय चार्ल्स बारहवां अपने मंत्री द्वारा पत्र लिखा रहा था। उसी समय उसके मकान पर एक बंब फेंका गया, जो छत को फाड़कर उसके सामने आ गिरा। इस भयानक दृश्य को देखते ही मंत्री के हाथ से क़लम गिर गई और वह काँपने लगा। बादशाह ने शांतिपूर्वक पूछा—'मामला क्या है?' मंत्री ने कहा—'महाराज बंब!' इसपर उन्होंने कहा—'बंब और लिखने से क्या संबंध? तुम लिखते जाओ।'

हमारी अनेक माताएं अपनी संतान को बचपन में ही हौआ का मंत्र सिखाकर सदा के लिये डरपोक बना देती हैं। यदि वे चाहें तो

उन्हें शिवाजी, राणाप्रताप और अमरसिंह राठौर की भांति निर्भीक और वीर बना सकती हैं। भारतवर्ष के समान स्पार्टा की माताएं भी अपने पुत्रों को युद्ध के लिये विदा करते समय यह आदेश देती थीं कि आओ तो तलवार-सहित आना अन्यथा उसके साथ मुरझायो हो जाना। माता सुभद्रा ने पुत्र अभिमन्यु को रण में भेजते समय कहा था—'देखो! माता का दूध न लजाना।' गत महायुद्ध में एक स्त्री ने अपने पति से कहा था—'मैं एक डरपोक की स्त्री होने के स्थान में एक वीर की विधवा होना अधिक पसंद करूंगी।' भारतीय महिलाओं के वीरोचित कार्य राजस्थान की भूमि पर अब तक स्वर्णाक्षरों में लिखे हैं। उनका चमकता हुआ खांड़ा वीरों के हृदय को चमका देता था। वीर क्षत्राणी युद्ध से हारकर लौटे हुए पति के लिये घर का द्वार बंद कर देती थी।

साहस की आवश्यकता केवल बड़े-बड़े वीरतापूर्ण कार्य करने में ही नहीं होती। आप छोटे-से छोटे कार्य को देख जाइए, साहस की प्रत्येक स्थान पर आवश्यकता होती है। बहुत-से आदमियों में भय की मात्रा इतनी अधिक होती है कि बिना एक-दो नौकरों को साथ लिए घूमने तक नहीं निकलते उन्हें पग-पग पर यही शंका बनी रहती है कि 'यदि कोई घटना हो जाय, या कोई आक्रमण करे तब?' ऐसे जीवन से तो मृत्यु ही भली है। डाकुओं के भय से खाट पर दम साधकर पड़े रहने तथा बाल-बच्चों का चीत्कार सुन, इस कान से सुनकर उस कान से निकाल देने से तो उनको गोली का शिकार हो जाना ही अच्छा है। 'युद्ध की मृत्यु, खाट की मृत्यु से अच्छी है।'

ड्यूक ऑव वेलिंगटन की सेना के लिए रुग्ण कप्तान ने अपने एक डाक्टर से पूछा—'मैं कितने दिन और जीवित रहूंगा?' उसने उत्तर दिया—'यद्यपि तुम्हारी दशा बहुत बुरी है। तथापि सावधानी से रहने से कई महीने और जीवित रह सकते हो।' तब कप्तान ने कहा—'केवल कई महीने! यहाँ खाट पर पड़े-पड़े मरने से तो यही अच्छा है कि

युद्ध में जाकर मरूं। वह अपने रेजिमेंट में वापस चला गया और वाटरलू के युद्ध में लड़ा। वहाँ उसके फेफड़े में घाव होगया, जिसमे वहाँ का रुग्ण भाग रक्त के साथ दूर हो गया और फिर वह कई वर्ष तक नीरोग होकर जीता रहा।

बिस्मार्क के मत से सफल जीवन का एक मात्र द्वार बड़ा परिश्रम है। जब उसकी मृत्यु के कुछ वर्ष पहले उससे सफल जीवन का एक स्पष्ट और सुगम उपाय पूछा गया, तब उसने जवाब दिया कि— मैं इस नियम को एक ही शब्द में बताता हूं और वह पवित्र शब्द है 'परिश्रम'। परिश्रम के बिना जीवन नीरस, व्यर्थ और दुःखपूर्ण है जो परिश्रम नहीं करता, वह कभी सुखी हो ही नहीं सकता। नवयुवकों के लिये मेरा संदेश तीन शब्दों में है—'परिश्रम ! परिश्रम !! परिश्रम !!!'

परिश्रम चिरकाल रहनेवाला पवित्र और श्रेष्ठ है वह सब पूर्णताओं का द्वार है। कोई आदमी भी बिना परिश्रम के सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। परिश्रम की आग में तमाम कुविचार जल जाते हैं और हम उसमें तपे हुए सोने की भांति खरे होकर निकलते हैं। हमारे दुर्भाग्य और सब बुराइयों के रोग की परिश्रम एक मात्र रामबाण औषध है।

हमारे देश में निर्धन घरों में उत्पन्न होनेवाले नवयुवक अपना जीवन निस्सार और तुच्छ समझ बैठते हैं। उन्हें ऐसा भास होता है, मानो निर्धनता उनका मार्ग रोके खड़ी है। उन्हें निर्धनता के आगे अपने सारे गुण व्यर्थ मालूम होते हैं; परंतु और देशों में यह बात नहीं है। निर्धनता उनमें आकांक्षा, साहस और उद्योग पैदा करती है। जॉन, हानवे, जो पहिले एक सौदागर के यहाँ नौकर था, अपने साहस और उद्योग से ही एक दिन लंदन का एक श्रेष्ठ धनी बन गया। यह सब जानते हैं कि नेपोलियन एक साधारण सिपाही से फ्रांस का सम्राट् बन गया था। इसी प्रकार अभी एक पत्र में प्रकाशित हुआ था कि एक कैंप

चलानेवाला अपने उद्योग से धीरे-धीरे उन्नति करता हुआ एक बड़े बैंक का वाईस-प्रेसीडेंट [उप सभा पति] हो गया। इन महाशय का नाम परसी जॉनसटन है। सोलह वर्ष की अवस्था में यह एक बैंक में नौकर हुए थे जहाँ इन्होंने अपनी कार्यदक्षता से बैंक की बड़ी उन्नति की थी। छब्बीस वर्ष की अवस्था में वे हिसाब-निरीक्षक, चार वर्ष पश्चात् प्रधान निरीक्षक और फिर छः वर्ष पश्चात् न्यूयार्क के एक बैंक के वाइस-प्रेसीडेंट हो गए।

अमेरिका के प्रसिद्ध धन-कुबेर मिस्टर एंडरू कार्नेगी का नाम सभी जानते हैं। इनका जीवन साहस और उद्योगमय था। लड़कपन में ही इन्होंने एक जुलाहे की नौकरी की थी और फिर वे तार-घर के चपरासी बने। क्रमशः इन्होंने तार का काम सीखा और 'पेनीसिल वेनिया रेलवे कंपनी' में सुपरिंटेंडेंट हो गए। कुछ काल के अनंतर इन्होंने कुछ संपत्ति एकत्रित की। फिर क्या था? इस पूँजी से उन्होंने कई कंपनियाँ खड़ी कीं और अमेरिका में ही नहीं, किंतु सारी दुनियाँ के बड़े मालदारों में इनकी गणना हो गई। इनकी आमदनी प्रतिदिन १५०००) थी और उन्होंने परोपकार में अपने जीवन में लगभग १८५००००००) व्यय किए।

भारतवर्ष में भी अनेक दरिद्र मनुष्य अपने परिश्रम और उद्योग से सफलता की ऊँची सीढ़ी पर पहुँच चुके हैं। 'ईस्ट एंड वेस्ट' के सुयोग्य संपादक बहरामजी मेरवानजी मालाबारी, मद्रास-हाईकोर्ट के जज मधुस्वामी ऐयर, निर्णय सागर प्रेस के स्वामी सेठ जावजी दादाजी चौधरी आदि निर्धन पिताओं के घरों में पैदा हुए थे।

दादाभाई नौरोजी के पिता पुरोहित थे और जब वे चार ही वर्ष के थे, उनके पिता की मृत्यु हो गई थी। उनकी माता अपने बेटे की शिक्षा का भी भार नहीं उठा सकती थीं और यदि उस समय बंबई में मुफ्त-शिक्षा न दी जाती होती, तो संभव है कि उनकी शिक्षा प्रारम्भ

ही न हुई होती। उन्हें धनाभाव के कारण प्रारम्भ में ही बड़े-बड़े कष्ट सहने पड़ते। परन्तु अपने अविरल परिश्रम और तीक्ष्ण बुद्धि से इन्होंने अनेक मनुष्यों की दृष्टि अपनी ओर खींच ली। वे बीस वर्ष की अवस्था में ही पश्चिमी भारत में एक बड़े विद्वान् समझे जाने लगे और इस छोटी-सी अवस्था से ही उनका महान् कार्य भी प्रारंभ हो गया। इसके पश्चात् उन्होंने आठ वर्षों में ही बम्बई में अनेक उपयोगी संस्थाएँ स्थापित कर डालीं। सन् १८५५ में कामा एण्ड कम्पनी अपनी एक शाखा लंदन में खोलना चाहती थी और इसके लिये उन्हें एक सुयोग्य संचालक की आवश्यकता थी। यद्यपि दादाभाई को व्यापारिक विषयों में तनिक भी अनुभव न था, परन्तु मेसर्स कामा एण्ड कम्पनी को उनकी कार्य-दक्षता, साहस और परिश्रम पर इतना विश्वास था कि उन्होंने दादाभाई को एक हिस्सेदार बनाकर इङ्गलैंड भेज दिया। वहाँ उन्होंने इस कार्य के अतिरिक्त भारतवर्ष का भी बहुत कुछ उपकार किया।

सन् १८८६ में दादाभाई पार्लामेंट के सदस्य होने के लिये चुनाव में खड़े हुए। यद्यपि कई विशेष कारणों से वे इस चुनाव में सफल नहीं हुए, तथापि वे इस तरह साहस और उद्योग को छोड़नेवाले मनुष्य न थे। सन् १८८७ के प्रारम्भ में ही वे फिर इङ्गलैंड चल दिए और वहाँ दुगुनी शक्ति से आगामी चुनाव में सफलता प्राप्त करने के लिये उद्योग करने लगे। पाँच वर्ष के अविश्रान्त परिश्रम और उद्योग से वे सन् १८९२ ई० में सफलतापूर्वक हाउस आफ कामंस के सदस्य चुन लिए गए। दादाभाई अपने जीवन में कभी बेकार नहीं बैठे और वृद्धावस्था में भी अनेक नवयुवकों से अधिक कठोर परिश्रम करते थे।

महर्षि गोखले को कौन भारतवासी है जो नहीं जानता? वे एक निर्धन महाराष्ट्र गृह में उत्पन्न हुए थे। पंडित मदनमोहन मालवीय को भी अधिक आर्थिक कष्ट सहन करना पड़ा था। स्वनामधन्य ईश्वरचंद्र विद्यासागर निर्धन-गृह में ही उत्पन्न हुए थे। वे जब विद्यार्थी थे, तब

अपने हाथ से पानी लाते, झाड़ू लगाते, अपने साथियों और अपने लिये भोजन बनाते, इसके पश्चात् विद्याध्ययन में घोर परिश्रम करते थे। उन्हें भोजन आदि बनाने के कारण दिन में कम समय मिलता था, इसलिये वे रात को बहुत देर तक पढ़ते रहते थे। श्री सी वाई० चिन्तामणि पहिले एक साधारण क्लर्क थे फिर 'लीडर' के सुयोग्य संपादक हुए और फिर नए शासन सुधारों में सरकार ने उन्हें शिक्षा-मंत्री भी बना दिया था। मि० चिंतामणि के पास विश्वविद्यालय की कोई डिग्री नहीं थी। उनके पास केवल उद्योग और कार्यक्षमता थी। देशबंधु सी० आर० दास ने न केवल अपने पिता को ही ऋण मुक्त किया था, वरन् और भी बहुत सा धन कमाकर देशहित में लगाया था।

साहसी और उद्योगी मनुष्य के मार्ग में निर्धनता अधिक बाधा नहीं पहुँचा सकती। वाट, स्टीफेंसन और डाल्टन पहिले बहुत ही छोटे पद पर थे, परन्तु परिश्रम के बल से ही उन्होंने अपने अस्तित्व को ऊँचा उठा लिया था। हम यदि महान् पुरुषों की जीवनियाँ उठाकर देखें, तो हमें ज्ञात होगा कि, उनमें से अधिकांश धनाभाव के कारण किसी पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करने भी न जा सके थे। वे कारखानों में काम करते और घर पर पढ़ते थे। बेरट लोहार का काम करता हुआ भी अठारह भाषाओं और बाईस बोलियों (Dialects) का पूर्ण पंडित बन गया था। ह्यूफ मिलर एक गरीब का लड़का था। उसका पिता उसे स्कूल के स्थान में किसी खान पर काम करने को भेज देता था, परंतु वह अपने साथियों, दूसरे सहयोगी काम करनेवालों, बढ़ई, मछुए, मल्लाह और वृद्ध स्त्रियों से ज्ञान एकत्र करने की चेष्टा करता रहता था।

जहाँ बहुत-से गरीब नवयुवक साधनों के अभाव से शिक्षा प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करते, वहीं बहुत-से धनी पिताओं के पुत्र साधनों के होते हुए भी विद्याध्ययन में परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं समझते। उनका बाल्यकाल अनेक आमोद प्रमोद और भोग विलास

में ही जाता है। यदि उनसे कोई पढ़ने को कहने जाता है, तो वे कह दिया करते हैं-"क्या हमें नौकरी करनी है?" ऐसे ही पुत्रों के एक धनी पिता ने मृत्यु-शय्या पर पश्चात्ताप करते हुए कहा था—"मैंने उनकी शिक्षा दीक्षा में कोई बात उठा नहीं रक्खी और उन्होंने जितना रुपया माँगा, मैंने उन्हें दिया। मेरे लड़के को सफलता और नाम प्राप्त करने के सबसे अधिक साधन प्राप्त थे, परंतु अन्तिम परिणाम को तो देखो! एक उनमें से डाक्टर है, पर उसके पास कोई रोगी नहीं आता, दूसरा वकील है परंतु उसके हाथ में कोई अपना मुकद्दमा नहीं देता, तीसरा इंजनियर भी है, परन्तु उसकी सलकदबन्दी मर्दन करता रहता है। मैंने जब उनसे परिश्रमी, साहसी और उद्योगी बनने के लिये कहा, तब मुझे उत्तर मिला—पिताजी! इससे कुछ लाभ नहीं। हमारे लिये आपके पास काफ़ी धन है। हमें कभी धनाभाव न होगा।"

यदि माता-पिता अपनी संतान को शिक्षित, उद्योगी और परिश्रमी बनाकर छोड़ जायँ तो वे उनके लिये लाखों, करोड़ों रुपए से भी अधिक मूल्यवान संपत्ति छोड़ जाते हैं। इसी विचार के एक धनी पुरुष ने अपने पुत्र से कहा था—"संसार मुझे धनी कहता है और मेरे पास वास्तव में अनन्त धन है। मैं तुम्हें विद्वान् और भला बनने का प्रत्येक सुयोग दे सकता हूँ, परन्तु मैं कभी भी इतना धनी न हो सकूँगा कि तुम्हें बेकार बैठा सकूँ। अनेक माता पिता अपने पुत्रों को बेकार बैठाकर उसका विष-फल चख चुके हैं। हमारे देश के धनी पुरुषों को यह शिक्षा गाँठ बाँधकर रख लेनी चाहिए।

अमेरिका के एक भारतीय विद्यार्थी ने अपने अमेरिका के अनुभव को 'सरस्वती' मासिक पत्रिका में इसप्रकार लिखा था कि 'सन् १९०९ ई० की गर्मियों की छुट्टियों में मैं एक गाँव के कारखाने में मज़दूरी करता था। वहाँ मुझे बहुत वज़नी बोरों को अपने कंधों पर उठाकर एक ऊँचे स्थान पर अच्छी तरह रखना पड़ता था। मेरे साथ अमेरिका का एक युवक

भी इसी कारखाने में मज़दूरी का काम करता था। कुछ दिनों तक एक साथ काम करते-करते हम दोनों में परिचय हो गया। तब मुझे मालूम हुआ कि वह युवक उसी कारखाने के मालिक का लड़का है। मैं आश्चर्य से चकित हो गया। धीरे-धीरे हम दोनों में मित्रता हो गई। अन्त में कारखाने के मालिक से भी मेरा परिचय हो गया। जब कारखाने के मालिक को यह मालूम हुआ कि मैं विश्वविद्यालय का छात्र हूँ, तब उसे बहुत हर्ष हुआ। एक दिन मौका पाकर मैंने उनसे पूछा—श्रीमान्! आपके समान संपत्तिवान् का पुत्र मेरे साथ काम करता है। यह क्या बात है? आप उससे यह काम क्यों कराते हैं? यह क्या बात है? आप उससे यह काम क्यों कराते हैं? मालिक ने कहा— लड़के को जितना गृह सुख आवश्यक है, उतना सब दिया जाता है। वह हाई स्कूल की परीक्षा उच्च श्रेणी में पास कर चुका है, परन्तु स्कूल की शिक्षा से लड़के नाजुक हो जाते हैं और उन्हें व्यवहारिक ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। इसलिये प्रतिवर्ष मैं छुट्टियों में लड़के को कारखाने का काम सिखाता हूं। इस प्रकार कठिन मज़दूरी करते-करते उसे शारीरिक शिक्षा के साथ-साथ व्यवहारिक ज्ञान भी प्राप्त हो जायगा। अब मैं उसे इंजिनियरी का काम सिखाने के लिये कॉलेज भेजूंगा। कालेज की तात्विक शिक्षा और कारखाने के व्यावहारिक काम मज़दूरी से इंजीनियरी तक उसे बहुत लाभ पहुंचावेंगे। यथासमय वह इस कारखाने का हिस्सेदार भी हो जावेगा और अन्त में उसे सुख और सम्पत्ति दोनों ही प्राप्त होंगी।"

यही सज्जन आगे लिखते हैं—"अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन में कृषि विद्यालयों और प्रयोग-शालाओं के प्रधान पुरुषों का सम्मेलन हुआ करता है। एक बार मैं इस सम्मेलन में निमंत्रित होकर वाशिंगटन जा रहा था। जिस रेलगाड़ी में मैं यात्रा कर रहा था, उसी में अमेरिका का एक करोड़पति भी वहीं जा रहा था। दोनों इस सम्मेलन में निमन्त्रित

गया मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि इस करोड़पति का लड़का इस रेलगाड़ी में टिकट-कलेक्टर का काम कर रहा था मेरे इसप्रकार की आश्चर्यपूर्ण दशा को देखकर उसने कहा—"इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है? क्या यह काम छोटे दर्जे का है? नहीं! इसी प्रकार मैं काम करते करते आज करोड़पति हुआ हूं पहले-पहल मैं भी रेल पर एक टिकट कलेक्टर का काम करता था जब मेरे पास कुछ धन सञ्चित हो गया, तब मैंने रेलवे-कंपनी के कुछ शेयर (हिस्से) खरीदे और कुछ व्यापार भी करना प्रारंभ किया। इसके बाद मैंने लोहे का एक बड़ा कारखाना खोला इसी प्रकार छोटे मोटे काम करते-करते मैं इस समय तक इस पद पर पहुंचा हूं मैं कष्ट से प्राप्त की हुई अपनी सारी संपत्ति अपने लड़के को सहज ही में न दे दूंगा, जब उसको यह मालूम हो जायगा कि धन का महत्व क्या है, मजदूरी और परिश्रम करने से क्या लाभ है, उद्योग और प्रयत्न का क्या फल होता है, तब धीरे धीरे मैं उसे व्यापार की व्यावहारिक शिक्षा दूंगा जब वह लायक हो जायगा तबमेरी यह सारी संपत्ति उसके अतिरिक्त और किसकी हो सकती है?" यदि हमारे देश के श्रीमानों के भी यही विचार हो जायँ, तो उनकी सन्तान को अतीव लाभ पहुंच सकता है।

बहुत से मनुष्य थोड़े ही परिश्रम से बहुत बड़े फल की अभिलाषा करते हैं। इसके अनंतर वे चाहते हैं कि वे इधर बीज डालें और उधर फसल काट लेवें जब उनकी यह अभिलाषा पूरी नहीं होती, तब वे भाग्य को दोष देकर बैठ जाते हैं; परन्तु वे यह नहीं सोचते कि उपज मिलने से पहले खेत को सींचना, खाद देना और उसकी रक्षा करना पड़ती है। इसके अतिरिक्त मनुष्य को तो सोचना चाहिए कि हमारा तो काम कर्तव्य करने का है, उन्हें उसका फल देने या न देने का निर्णय ईश्वर के ऊपर ही छोड़ देना चाहिए। हमारी प्रशंसा तो दौड़ के दौड़ने में है, न कि उसके पारितोषिक पाने में एमर्सन कहता है—"तुम केवल

अपने आदर्श की ओर ध्यान रक्खो; फिर उसका फल तो तुम्हें अवश्य ही मिलेगा।"

बहुत-से मनुष्य अनेक ज्योतिषियों और साधुओं को अपना हाथ और जन्मपत्री दिखाते फिरते हैं और पूछते हैं कि उनका भाग्य कब पलटेगा? वे कोई काम सोचते हैं, परंतु उसे काम में लाने के लिये अपने अच्छे दिनों की प्रतीक्षा करते रहते हैं। इन लोगों के अच्छे दिन कभी नहीं आते उद्योग उनके सम्मुख कोई वस्तु ही नहीं है, वे भाग्य के भरोसे पर हाथ पर-हाथ धरे बैठे रहते हैं। वे शिवालयों और मसजिदों में प्रार्थना करते हैं कि 'तू हमारे भाग्य को फेर दे; परंतु वे यह नहीं जानते कि ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता खुद करते हैं। God helps those who help themselves

सुगम मार्ग ग्रहण करने से कभी मनुष्य उन्नति-शील नहीं हो सकता। एक कार्य को दूसरे से करा लेने के स्थान में स्वयं कठिन परिश्रम करके उसे पूरा करना ही मनुष्योचित है। अनेक मनुष्य अपने छोटे छोटे और बड़े-बड़े सभी कामों के लिये अपने नौकरों पर अवलंबित हो जाते हैं यह अत्यन्त बुरा है

महान् पुरुषों का एक चिह्न यह होता है कि वे लोगों के मतामत को अधिक परवाह न कर अपनी आत्मा के आदेशानुसार जिस कार्य को हाथ में ले लेते हैं; फिर उसको पूरा करके ही छोड़ते हैं। जनता उन्हें देशद्रोही, नीच समझकर धिक्कारती है; परंतु वे सबका सामना करते हुए—उन कामों को नहीं छोड़ते, जो उनकी दृष्टि में देश और समाज के लिये हितकर है.. प्रिन विल्के बार्प, जिसने इङ्गलैंड से गुलामी का व्यापार कटका ही छोड़ा, केवल आप ही अपना समर्थक था। उसको उत्साहित करनेवाला एक भी मनुष्य संसार में न था बड़े-बड़े वकील उसके घोर विरोधी थे, परन्तु उसने अपने साहस और उद्योग से सब पर विजय प्राप्त की। प्रेस के आविष्कारक ने जब पहले पहल छपी हुई

पुस्तक निकली, तब लोगों ने इसे भूत प्रेत का काम समझकर उसपर न्यायालय में मुकदमा चलाया था। इसी तरह शीतला के टीके के आविष्कारक को भी जनता की कोपाग्नि सहनी पड़ी।

महान् पुरुषों का एक दूसरा चिह्न यह होता है कि, वे एक सुयोग को प्राप्त करते ही उसे कभी हाथ से नहीं जाने देते। जो मनुष्य संसार में अपना मार्ग बना लेना निश्चित कर लेते हैं, उन्हें स्वयं ही अनेक सुयोग मिल जाते हैं।

प्रायः अनेक महान् कार्यों के लिये बड़े-बड़े साधनों की आवश्यकता नहीं होती। वे केवल उद्योग और बुद्धिमत्ता से ही संपन्न होते हैं। न्यूटन ने एक पेंसिल एक लैंप और कुछ कागज के टुकड़ों से ही रंग का आविष्कार किया था। डाक्टर ब्लैक ने केवल दो तापमापक यन्त्र और दो गिलास पानी से ही गुप्त ताप के सिद्धांत का ढूँढ़ निकाला था। उनके पास बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएँ और धन नहीं था। उनके पास था तो केवल उद्योग और साहस।

जो आदमी परिश्रम नहीं करते, वे प्रायः रोगी हो रहते हैं। बेकार बैठे रहना ही सब रोगों का आदि कारण है। एक सज्जन ने अपने मित्र से पूछा कि उसका भाई किस रोग से मर गया? उसने उत्तर दिया उसके पास कोई काम करने को न था। जो आदमी परिश्रमी हैं और एक घड़ी बेकार नहीं बैठते, वे प्रायः स्वस्थ और सदाचारी पाए जाते हैं। प्रसिद्ध यूनानी डाक्टर गैलन के विचार में परिश्रम एक प्राकृतिक वैद्य है।

जब आदमी बेकार बैठते हैं, तभी उनके मस्तिष्क में कुविचार उत्पन्न होते हैं। बेकार आदमी का आनन्द, शांति, सुख सब विलीन हो जाता है।

चार्ल्स किंग्सले ने जोर देते हुए कहा है—"प्रतिदिन तुम उठो और यदि तुम्हें कोई काम, जो तुम्हें पसंद हो या न भी हो—मिल जाय, तो

तुम ईश्वर को धन्यवाद दो। परिश्रम करने से तुममें स्वाभिमान, इच्छा शक्ति संतोष आदि सैकड़ों ऐसे गुण आ जाएँगे, जो काहिल आदमी स्वप्न में भी प्राप्त नहीं कर सकता।"

बेकार बैठे रहने से तो बेगार ही भली है। यदि तुम्हारे पास किसी समय कोई कार्य न हो, तो तुम बेकार मत बैठे रहो। अपने कमरे की चीजें ही ठीक करने में लग जाओ चरखा लेकर सूत कातने लगो या किसी रोगी की सहायता में दत्तचित्त हो जाओ।

एक समय इङ्गलैंड में काहिल आदमियों को राजनियमानुसार दंड देने की व्यवस्था थी। प्रथम दोष पर वह न्यायाधीश के पास ले जाया जाता और उसका दोष लिख लिया जाता था। दूसरी बार उसी अपराध के करने पर उसके हाथ जला दिए जाते थे और तीसरी बार उसे प्राणों से ही हाथ धोना पड़ता था।

प्रायः यह देखने में आता है कि महान कार्यों के अनुष्ठान में पहिले अधिकतर विफलता ही प्राप्त होती है, परन्तु दृढ़ता से उद्योग करते रहने पर सफलता अवश्य प्राप्त होती है। ड्यूक ऑफ लिनवरा की वकालत आरम्भ में बिलकुल ही न चली, परन्तु उसने निश्चय कर लिया था कि वह सफलता प्राप्त करने तक उद्योग करता ही रहेगा। वह कठोर परिश्रम करता था और जब बिलकुल थक जाता, तो सम्मुख लिखे हुए इन शब्दों पर अपनी दृष्टि डाल लेता था—"परिश्रम करो, अन्यथा भूखों मरो।"

फ्रैंकलीन पीयर्स में यदि साहस और उद्योग की मात्रा इतनी अधिक न होती, तो क्या वह कभी अमेरिका का प्रेसीडेंट बन सकता? प्रारम्भ में उसकी वकालत असफल रही, परन्तु उसने कहा मैं तो नौ सौ निन्यानबे बार उद्योग करूँगा और यदि फिर भी असफल रहा, तो सहस्रवीं बार फिर नए उत्साह से कार्य प्रारम्भ करूँगा। निस्सन्देह इस भीष्म प्रतिज्ञा के सम्मुख सफलता चेरी हुए बिना नहीं रह सकता।

बड़े-बड़े गुणों की अपेक्षा साहस और उद्योग की अधिक आवश्यकता है। आज हम जिनकी यश गाथा गाते हैं, संभव है उनके समय में उनसे भी अधिक योग्य और विद्वान् पुरुष रहे हों, परंतु उनमें अपने गुणों को कार्यरूप में लाने के लिये साहस और उद्योग की कमी थी। संभव है, भारतवर्ष में इस समय भी अनेक मनुष्य महात्मा गांधी से विद्वत्ता और राजनीति में बढ़े-चढ़े निकल आवें, परन्तु अवश्य ही उनकी योग्यता और विद्वता अग्नि को राख में दबी पड़ी है, उनमें अपनी विद्वत्ता और राजनीतिज्ञता को कार्यरूप में परिणत करने के लिये साहस और उद्योग की कमी है। जेम्स वॉट से उस समय अनेक मनुष्यों का ज्ञान बढ़ा-चढ़ा था, परन्तु उनमें-से किसी ने भी वॉट के समान अपने ज्ञान को उपयोगी और व्यावहारिक बातों में लाने का उद्योग नहीं किया। वॉट को बाल्यकाल में ही अपने खिलौने से वैज्ञानिक यन्त्रों का अनुभव होता था। न्यूकोमैन का बनाया हुआ भाफ़ का इञ्जन जब उसके सामने आया, तब उसने उससे संबंध रखनेवाली सब बातों का अध्ययन कर लिया। अपने अध्ययन के परिणामों से उसने स्वयं उससे भी एक अच्छा भाफ़ का इञ्जन बनाकर दिखला दिया। दस वर्ष तक वह यन्त्रों के विषय में विचार करता रहा। इस बीच में उसे अनेक कठिनाइयाँ और आपदाएँ सहन करनी पड़ीं। उसका सहायक एक भी न था, पर निराशा दिलानेवाले अनेक थे। उसे दूसरे धंधे करके पेट भरना पड़ता था। वह नीच ऊँच का विचार न करता और उसे जो काम मिल जाता, उसे ही करने लगता था। वॉट के उद्योग का एक प्रथम और महान् परिणाम यह हुआ कि मशीन के द्वारा रुई ओटने और कातने का काम होने लगा।

परिश्रम और उद्योग के साथ धैर्य की भी अत्यन्त आवश्यकता है। कभी कभी हम जिस कार्य का बीज आज डालते हैं, उसका अंकुर कहीं वर्षों में जाकर फूटता है। बहुत से मनुष्य इसीलिये असफल रहे,

क्योंकि उनमें फल की प्रतीक्षा करने की शक्ति नहीं थी। वेजवुड उद्योग और धैर्य की प्रतिमा था। उसके पिता, प्रपिता कुम्भकार (कुम्हार) थे। उसे बचपन में ऐसी तेज शीतला निकली कि जिससे वह सारी आयु दुखी रहा, क्योंकि उससे उसके दाहिने घुटने में एक ऐसी बीमारी हो गई कि जो अक्सर उठ आती थी। अंत में उसे अपना पैर कटवाना ही पड़ा। वह अपने भाई के साथ बर्तन बनाना सीखता था। इसके पश्चात् वह और एक कारीगर का साझीदार हो गया और चाकू के दस्ते, संदूक आदि बनाकर बेचने लगा। साथ ही उसका ध्यान ऐसे बर्तन बनाने पर गया, जैसे उस समय इंगलैंड के स्टेफर्डशायर नामक प्रांत में बना करते थे और उसने उनकी खूबसूरती, रंग, चमक, मज़बूती में और भी उन्नति करनी चाही। इसे कुछ समय तक अपनी भट्ठियों के कारण बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। परन्तु उसने उसका धैर्य के साथ सामना किया। प्रारम्भ में उसने रसोई के चीनी के बर्तन बनाने की चेष्टा की। उसमें उसे लगातार असफलताएँ हुईं। महीनों का परिश्रम प्रायः एक दिन में ही नष्ट हो जाने लगा। अंत में उसने इन सब कठिनाइयों को दूर कर सफलता प्राप्त की और वह धनी बन गया।

डॉक्टर बुकर टी० वाशिंगटन एक गुलाम नीग्रो स्त्री के पेट से पैदा हुए थे। बचपन ही से उन्हें मेहनत, मज़दूरी करनी पड़ती थी उस समय नीग्रो संतान के लिये शिक्षा की बात करना स्वप्न में भी असंभव था, परन्तु वाशिंगटन के हाथों से तो संसार में नीग्रो-जाति के लिये महान् कार्य होनेवाले थे। उन्हें शिक्षा प्राप्त करने में बड़े बड़े कष्ट उठाने पड़े। वे खानों में काम करते और बचे खुचे समय में विद्याध्ययन करने की चेष्टा करते थे। इसके पश्चात् वे किसी तरह हैंपटन कालेज में जा पहुंचे। वहाँ भी शिक्षा के साथ-साथ उदरपूर्ति के लिये उन्हें छोटे-छोटे कार्य करने पड़ते थे। हैंपटन की पढ़ाई समाप्त होने के पश्चात् उन्होंने अपने भाइयों की उन्नति का बीड़ा उठाया। उनका

कार्यक्षेत्र बड़ा दुर्गम था। उस समय नीग्रो जाति में अज्ञान और आलस्य कूट-कूटकर भरा था। वे स्वच्छता तो नाम को भी न जानते थे, दाँत कभी साफ़ न करते और स्नान भी, दस-पन्द्रह दिन में एक बार ही करते थे घर गृहस्थी का ढंग इन्हें ज्ञात ही न था। अधिकांश नीग्रो बड़ी ही ज़िल्लत के साथ अपना गुज़ारा करते थे। ऐसे लोगों में उन्हें काम करना था; परंतु उन्होंने साहस नहीं छोड़ा। इनमें विद्या का प्रचार करने के लिये टस्केजी से एक मील के फ़ासले पर एक पुरानी कोठरी, अस्तबल और मुर्गीख़ाने में उन्होंने एक पाठशाला खोली। वाशिंगटन अपने विद्यार्थियों में परिश्रम की बात कूट-कूट कर भर देना चाहते थे। इसके अतिरिक्त उनके पास उस स्थान की मरम्मत करने के लिये धन भी न था, इस लिये उन्होंने स्वयं विद्यार्थियों से उसकी मरम्मत के लिये कहा, परन्तु विद्यार्थी ऐसे तुच्छ काम करने के लिये राजी न हुए। अभी तक उन विद्यार्थियों ने शारीरिक परिश्रम का महत्व नहीं जाना था; परन्तु जब स्वय वाशिंगटन कुदाली लेकर ज़मीन खोदने में जुट गए, तब विद्यार्थियों को लज्जित होकर आना पड़ा। उनका सिद्धांत था, जो कार्य अपने हाथ से कर सकते हो, उसके लिये दूसरों का आसरा मत देखो।

वाशिंगटन इस छोटी-सी पाठशाला को किसी दिन समस्त नीग्रो जाति के एक महान् विश्वविद्यालय के रूप में देखने की आशा रखते थे। धीरे-धीरे वे उसकी उन्नति करने लगे और कुछ वर्ष पश्चात् उन्होंने विद्यालय के लिये एक भवन निर्माण करने का भी निश्चय किया। किसी तरह उन्हें उसके लिये ज़मीन और सामान मिल गया। भवन के विषय में स्मरणीय बात यह है कि विद्यार्थियों ने स्वयं अपने हाथों से उसे बनाया है। अनेक विद्यार्थी यह शिकायत करते रहे कि हमलोग यहाँ पढ़ने आए हैं, न कि मज़दूरी करने; परंतु वाशिंगटन ने इस शिकायत की कोई परवाह न की। टस्केजी में भवन के लिये जब ईंटे

बनाना आरंभ किया गया था तब उन्हें इस विषय का कुछ भी ज्ञान न था। उन्होंने तीन बार प्रयत्न किया और तीनों बार काम बिगड़ गया। उन्हें चौथी बार पजावा (भट्ठा) लगाने के लिये अपनी घड़ी तक बेचनी पड़ी। परंतु अन्त में उन्हें सफलता प्राप्त हुई। उसी ईंटों के कारखाने ने इतनी तरक्की की है कि वहाँ विद्यार्थी वर्ष में बारह लाख ऐसी ईंटों को तैयार करते हैं, जो किसी भी बाज़ार में बिक जाते हैं। सन् १९०१ में टस्कजी विद्यालय के चालीस भवनों में छत्तीस भवन ऐसे थे, जो केवल विद्यार्थियों ने ही बनाए थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वाशिंगटन के उद्योग और साहस ने ही एक मुर्गीख़ाने की पाठशाला को महान् विश्वविद्यालय में परिणत कर दिया। हमारे देश में भी काशी-हिंदू विश्वविद्यालय, लाहौर का डी० ए० वी० कालेज और काँगड़ी का गुरुकुल आदि क्रमशः पं० मदनमोहन मालवीय, महात्मा हंसराज और स्वामी श्रद्धानन्द के महान् उद्योग से बने हुए हैं।

राजा भर्तृहरि नीति-शतक में कहते हैं—

> प्रारभ्यते न खलु विघ्न भयेन नीचाः।
> प्रारभ्य विघ्न विहता विरमन्ति मध्याः॥
> विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः।
> प्रारब्धमुत्तम जना न परित्यजन्ति॥

अर्थात् संसार में तीन भाँति के मनुष्य होते हैं—(१) नीच (२) मध्यम और (३) उत्तम। नीच मनुष्य विघ्न के भय से कार्य को प्रारंभ ही नहीं करते। मध्यम मनुष्य काम को प्रारंभ तो कर देते हैं, परन्तु किसी विघ्न के आते ही उसे छोड़ देते हैं, परन्तु उत्तम मनुष्य जिस काम को प्रारम्भ करते हैं, उसे विघ्न पर विघ्न होने पर भी समाप्त करके ही छोड़ते हैं। महाराज भगीरथ ने गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिये घोर तपश्चर्या की। वर्षा, अग्नि, वज्र का भय तथा अप्सराओं और

ऐश्वर्य का लाभ कुछ भी उन्हें अपने मार्ग से विचलित न कर सका और विष्णु भगवान् को पृथ्वी पर गंगा को छोड़ना ही पड़ा।

संभव है आप कहें "हमें कुछ ऐसे मनुष्य भी मिलते हैं, जो जन्म पर्यन्त निरन्तर परिश्रम में लगे रहने पर भी अपने जीवन को अधिक सफल नहीं बना सके हैं ? इसे हम प्रारब्ध का खेल न कहें तो क्या कहें ?" यह ठीक है परन्तु यदि आप ध्यानपूर्वक देखेंगे, तो आपको मालूम हो जायगा कि उनका कार्यक्रम कोई नियमित और सुगठित नहीं है। वे भैंस के पीछे रस्सा लिए डोलते फिरते हैं। परिश्रम करते हुए भी सफलता न मिलने के निम्नलिखित कारण हैं—

(१) अनियमित कार्यक्रम और ढंग।

(२) तुच्छ तथा नीच विचार।

(३) मन के प्रतिकूल व्यवसाय।

(४) धैर्य से फल की प्रतीक्षा करने की कमी।

हमें अपने सब कामों को किस ढंग से करना चाहिए, इसके लिये कोई स्वर्णपथ नहीं बताया जा सकता। प्रत्येक मनुष्य अपनी स्थिति के अनुसार कार्य और ढंग निर्माण कर सकता है, परन्तु नीचे लिखी साधारण बातें किसी भी स्थिति में अवश्य सहायक हो सकती हैं:—

(१) किसी काम को उठाने से पहिले उसे खूब सोच-विचार लो।

(२) जिस काम को हाथ में लो, उसे पूर्ण करके ही छोड़ो।

(३) किसी कार्य का कर्त्तव्य समझ कर ही करो। उसके फल के निर्णय करने का भार ईश्वर पर छोड़ दो।

(४) उद्योग और परिश्रम के बिना किसी कार्य में भी सफलता नहीं हो सकती। इसलिये उनसे मत घबड़ाओ।

(५) प्रत्येक कार्य में बाधाएँ अवश्य आती हैं, किंतु संतोष और दृढ़ता से उनपर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

(६) परिश्रम करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है, उससे सुख और शांति प्राप्त करो।

(७) अपना उद्देश्य को ऊँचा रक्खो, परन्तु तुच्छ कामों के करने से पीछे मत हटो। संसार में कोई काम तुच्छ नहीं है।

(८) सुअवसर मिलते ही मत चूको, विश्वास के साथ प्रारंभ कर दो। सुअवसर न भी मिले, तो उसकी राह मत ताको।

(९) कोई भी काम हो, उसका नियमित ढंग बना लो। नियमित ढंग से काम करने में घबड़ाने या भूल करने की आशंका नहीं रहती।

(१०) आत्म विश्वास रक्खो, अपने को तुच्छ मत समझो।

तीसरा मोर्चा

समय का सदुपयोग

"श्वः कार्यमद्य-कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्॥

× × ×

"समय मेरी सबसे बड़ी जायदाद है।"—एक विद्वान्

× × ×

"यदि तुम संसार में महान् पुरुष बनना चाहते हो, तो अपने प्रत्येक पल का उचित उपयोग करो।"

× × ×

"समय मेरी जायदाद है और वह ऐसी जायदाद है कि इसमें बिना जोते-बोए तो कुछ पैदा नहीं होता, परन्तु इसको सुधार देने से परिश्रमी कार्यकर्त्ता का भी परिश्रम निष्फल नहीं जाता।"

—इटली का एक विद्वान्

प्रायः अनेक मनुष्य कहा करते हैं—"मैं अमुक काम करना चाहता हूं, परन्तु समय न मिलने के कारण असमर्थ हूं।" ऐसे मनुष्यों को कभी भी किसी महान् कार्य करने के लिये समय नहीं मिलता। वे जब देखो समय न मिलने का रोना ही रोया करते हैं, परन्तु वास्तव में बात यह है कि वे समय का उचित मूल्य और उसका उपयोग करना ही नहीं जानते। यदि तुम वास्तव में कोई कार्य करना चाहते हो, तो तुम्हें उसके लिये समय की कभी कमी न रहेगी, परन्तु यदि उसकी इच्छा नहीं है तो समय कभी भी न मिलेगा।

भारतवर्ष के मनुष्यों की औसत-आयु बत्तीस साल की है। इसमें से आधी आयु तो सोते-सोते ही निकल जाती है। शेष बचे हुए सोलह वर्ष में जीवन के सारे कार्य करने पड़ते हैं। विद्याध्ययन करना है, धनोपार्जन करना है, सार्वजनिक कार्य करने हैं और आवागमन के चक्कर से छुटकारा पाने के लिये धार्मिक कृत्य भी करने हैं। अल्प समय है और कार्य बहुत हैं। इसपर भी समय वायु-वेग से उड़ा जा रहा है। देखते-देखते दिन बीतते हैं, मास बीतते हैं और वर्ष बीत जाते हैं।

सुबह होती है, शाम होती है।
योंही उम्र तमाम होती है॥

एक दूसरे कवि ने कहा है—

घड़ियाल कभी रोज़ यह करता है मनादी।
गरदूं ने घड़ी उम्र की एक और घटा दी॥

ऐसी स्थिति में मनुष्य के पास अपव्यय करने को समय ही कहाँ है?

मनुष्य को धन बड़ा प्रिय है। उसके 'सर्वेगुणाः काञ्चन मा श्रयन्ति' उक्ति सोलहों आने ठीक है। वह एक पैसा भी व्यर्थ खर्च करना नहीं चाहता, परंतु कैसे शोक की बात है कि वह रोज़ लाखों रुपए के मूल्य के समय को यों ही नष्ट कर देता है। धन तो चले जाने पर भी प्रयत्न से वापस आ सकता है, परंतु समय सिर पटककर मर जाने पर भी वापस नहीं आता। इसलिए समय को व्यय करने में बड़ा सावधान रहना चाहिए।

हमारे देश में समय की इतनी क़द्र नहीं की जाती, जितनी की जानी चाहिए। यहाँ विशेष कर धनी युवक, अपने समय की बड़ी निर्दयता से हत्या करते रहते हैं। जहाँ दो-चार इकट्ठ हुए घंटों ही इधर-उधर की व्यर्थ बातों और परनिंदा में व्यतीत कर देते हैं। उनको इन बातों का न तो कोई उद्देश्य होता है और न अर्थ ही। शोक की बात तो यह है कि शिक्षित युवक-मंडली और विद्यार्थी-समूह में ही यह अवगुण अधिक पाया जाता है। जिस समय में वे किसी उपयोगी विषय पर वार्तालाप कर लाभ और मनोविनोद दोनों प्राप्त कर सकते हैं, उसी समय को वे व्यर्थ हाहा, हूहू और हो हल्ला में उड़ा देते हैं।

इसके अतिरिक्त बहुत से मनुष्य बड़े आलसी होते हैं उन्हें दिन में भी दो-चार घंटे सोए बिना चैन नहीं पड़ती। दो-एक घंटे ताशबाज़ी में उड़ जाते हैं। बस, उनका जीवन इन्हीं बातों में नष्ट होता है। ऐसे आदमी सदैव मरते समय पश्चात्ताप करते हुए कहा करते हैं 'हाय! मैं अमुक-अमुक कार्य अपने जीवन में न कर सका।' व्यर्थ नष्ट किए हुए समय के साथ में ही उनके प्राण-पखेरू शरीर से उड़ जाते हैं।

हमारे अधिकांश विद्यार्थी वर्ष में ग्यारह महीने तो व्यर्थ ही खेल-कूद में नष्ट कर देते हैं। उस समय सदैव उनकी पुस्तकें ताक़ पर ही रक्खी दिखाई देती हैं, परन्तु परीक्षा के निकट आने पर वे रात दिन पुस्तकों से चिपटे रहते हैं। इस प्रणाली से उनका स्वास्थ्य और समय

दोनों ही नष्ट होता है। ऐसे विद्यार्थी तो फाँक कर डिग्री भले ही प्राप्त कर लें परंतु वे कभी प्रतिभाशाली नहीं होते।

बहुत-से मनुष्य कहा करते हैं—"आज हम अमुक कार्य करना भूल गए। ख़ैर! कल देखा जायगा" परंतु यह 'कल' कभी नहीं आता। प्रायः रोज़ कल-कल करते वर्षों व्यतीत हो जाते हैं। हमें जो कुछ करना हो, आज ही कर लेना चाहिए, कल न जाने कैसी स्थिति हो! आज हमें एक कार्य के लिये जो सुविधाएँ प्राप्त हैं, संभव है वे कल न रहें। यदि कोई दूकानदार आज का काम कल पर छोड़ दे, तो बाज़ार की घटती-बढ़ती से शीघ्र ही उसका दिवाला निकल जाय।

बहुत-से मनुष्य अपने बीते हुए समय के लिये पश्चात्ताप करने में ही बहुत-सा समय नष्ट कर देते हैं। वे तो उन मूर्खों के समान हैं, जो खोए हुए पैसों के लिये तो हाथ मलते हैं, परन्तु अपने पास के रुपयों को धूल में फेंकते जाते हैं। 'बीती ताहि बिसार दे, आगे को सुधि लेय'—की उक्ति के अनुसार जो समय बीत गया वह तो वापिस आ नहीं सकता, फिर उसका विचार करना ही व्यर्थ है। जो कुछ हो गया, सो हो गया। अब उसके लिये पछताने की आवश्यकता नहीं। उन्हें तो इस बात का उद्योग करना चाहिए कि कहीं आगे जाकर फिर रोना न पड़े।

जो अपने समय के प्रत्येक पल को सावधानी के साथ व्यय करते हैं, उन्हें कभी समय की कमी नहीं रहती। वे इस संसार में अनेक महान् कार्य करते हैं। नेपोलियन अपने थोड़े-से जीवन में ही न केवल सिपाही से फ्रांस का सम्राट् बन गया, वरन् संसार के इतिहास में अपनी एक विशेष छाप लगा गया। इसका कारण यह था कि उसके पास आवश्यक और महान् कार्य करने के लिये तो सदैव समय निकल आता था, परंतु व्यर्थ नष्ट करने के लिये एक पल भी उसके पास न था।

बहुत-से मनुष्य समय के पाबन्द नहीं होते। भारतवासियों में यह

दुर्गुण बहुत फैल गया है। उनका समय इंडियन टाइम्स कहलाता है। वास्तव में समय तो एक ही है, इंडियन या अंगरेज़ी नहीं। केवल हम अपनी लापरवाही से अपना मज़ाक उड़वाते हैं। एक सभा या भोज का समय नियत तो किया गया छः बजे, परन्तु प्रारम्भ हुआ कहीं आठ बजे जाकर। अनेक लोग तो इसीलिये वास्तिक समय से घंटा-दो घंटा पहिले का समय देते हैं। इस प्रथा से कई हानि हैं—एक तो लोगों का विश्वास हमपर नहीं रहता, दूसरे समय भी नष्ट होता है। हमारी इस आदत के कारण अनेक मनुष्यों को इन्तज़ारी करनी पड़ती है और कभी कभी बड़ी हानि भी हो जाती है। पश्चात् देश-वासियों को कम-से-कम समय की पाबन्दी का तो बड़ा ख़याल होता है। एक सज्जन दस बजे अपनी दुकान पर जाते थे। लोग उन्हें ही देखकर ठीक समय मालूम कर लेते थे और इसप्रकार घड़ी देखने की उन लोगों को आवश्यकता न रहती थी। फ्रांस देश के सम्राट् लुई कहा करते थे—"समय की पाबन्दी सुशीलता का चिह्न है।" एक दिन अमेरिका के सभापति जार्ज वाशिंगटन के मंत्री कुछ देर करके आए और घड़ी ग़लत होने का बहाना करने लगे। इसपर धीरे से उन्होंने कहा—"आप या तो दूसरी घड़ी रखिए, अथवा मैं दूसरा मंत्री रक्खूँगा।"

बहुत-से मनुष्य सूर्य के चढ़ आने पर भी सोते रहते हैं। एक प्रतिभाशाली कवि को देर तक सोते रहने की आदत थी। वह इस बुरी आदत को छोड़ना चाहता था, परन्तु उसका उद्योग सब व्यर्थ हुआ। अन्त में उसने इस कार्य के लिये एक सेवक रक्खा और उससे कह दिया कि तू मेरी गालियों की परवाह न करके मुझे उठा दिया कर। वह मनुष्य जब उसे उठाने आता, तो कवि उसे अपशब्द कहता, हाथ-पैर चलाता; परन्तु वह इसकी परवाह न करके उसे उठाकर ही छोड़ता था। थोड़े दिनों में उसकी यह बुरी आदत छूट गई। अब उसकी सर्व श्रेष्ठ रचनाएँ वही समझी जाती हैं, जो उसने सूर्य निकलने से पहिले

लिखी थीं दिन में सोना तो समय का अपव्यय है ही, परन्तु इससे मनुष्यत्व और स्वास्थ्य को भी बड़ा धक्का पहुँचता है। मनुष्य के अनेक स्वाभाविक गुणों का विकास उनमें नहीं होने पाता। हिंदू-धर्म में इसीलिये सूर्योदय से एक घड़ी पहले उठने की इतनी महिमा कही गई है।

हमारी कोई नियमित व्यवस्था न होने से भी बहुत समय नष्ट होता है। यदि प्रत्येक कार्य के लिये समय निश्चित हो और वह उसी समय किया जाय, तो कुछ समय की अवश्य बचत होती है हमें तब यह नहीं सोचना पड़ता कि इस समय कौनसा काम करें? हमारा काम तो पहिले ही से निश्चित है और ज्यों वह समय आया, हमने तुरन्त वही काम प्रारंभ कर दिया। समय का विभाग होना आवश्यक है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि हम किसी जटिल नियमों में जकड़ हो जायँ। हमें केवल एक सिद्धांत निश्चय कर लेना चाहिए। मस्तिष्क को ताज़ा करने के लिये हंसन और मित्रों से वार्तालाप करने की भी आवश्यकता है, परन्तु यह निश्चित समय और शिष्टता के साथ ही होना चाहिए। दोपहर को तो क़तई न सोने का नियम कर लीजिए। दोपहर को सोने से तामसिक वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। दिन भर शरीर भारी बना रहता है। स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुंचती है और समय तो नष्ट होता ही है।

बहुत-से मनुष्य कहा करते हैं—"जब सुअवसर आवेगा, तब हम अमुक काम करेंगे।" परन्तु वे यह नहीं सोचते कि अच्छे कार्य करने के लिये प्रत्येक समय ही सुअवसर है, सुअवसर के लिये बैठना बुरा है। है। एक महात्मा का मत है कि 'हमें उत्तम अवसरों के आसरे न बैठे रहना चाहिए, बल्कि साधारण समय को ही उत्तम अवसर में परिणत कर देना चाहिए।

जब मरे मुट्ठी भर अन्न बिना,
पट रस आहार बेकार है फिर।

दो घूंट नीर बिन मरने पर,
अमृत की धार अपार है फिर॥
जब खेत उजड़ और सूख गया,
फिर जल आए क्या होता है।
जब समय पड़े पर चूक गए,
फिर पछताए क्या होता है॥

महादेव गोविंद रानाडे को बाल्यकाल में जो कोई देखता था, यही कहता था कि वे जीवन में कभी सफलता प्राप्त न कर सकेंगे। बहुत काल तक बचपन में उनकी ज़बान ही न खुली और जब वे बोलने भी लगे, तो तुतलाकर। वे बहुत ही सुस्त बैठे रहते थे, यहाँ तक कि वे शरीर पर बैठी हुई मक्खियाँ भी न उड़ाते थे; परन्तु आगे जाकर उन्होंने अपनी बुद्धि से संसार को चौंधिया दिया। उनकी सफलता का कारण यही था कि, वे समय पर सब काम करते थे वे एक बार फाइनेन्स कमेटी में नियुक्त होकर कलकत्ते पहुंचे। एक दिन आप बंगले में बैठे हुए अपनी पत्नी से बातचीत कर रहे थे। इतने में एक बँगला समाचार-पत्र-विक्रेता वहाँ आया और उनको ग्राहक होने के लिये कहने लगा। रानाडे महोदय बँगला नहीं जानते थे; परन्तु उन्होंने अखबार ले लिया। दूसरे दिन जब वे घूमने निकले, तो और दिनों की अपेक्षा देर से लौटे। साथ में उनके एक आदमी छोटी-बड़ी दस पन्द्रह किताबें लिए हुए था। ये किताबें अंग्रेजी की मदद से बंगला सीखने की थीं।

रानाडे महोदय ने उन किताबों से बंगला सीखना प्रारम्भ कर दिया। दिन को भी उन्हें पढ़ते और शाम को भी; यहाँ तक कि घूमते समय भी उनके हाथों में वे ही पुस्तकें रहती थीं। एक दिन वे प्रातः कृत्यों से निपट कर हजामत बनवाने बैठे; तब भी उनके हाथ में बंगला की पुस्तक न छूटी। वे उसे ज़ोर-ज़ोर से पढ़ते जाते थे और नाई उनकी ग़लतियाँ सुधारता जाता था। उन्होंने डेढ़ ही महीने में बंगला में

निपुणता प्राप्त कर ली। एक पुराने ग्रंथकार ने समय का सदुपयोग करने के निम्नलिखित ढङ्ग बतलाए हैं—

(१) स्वास्थ्य बिगाड़ देनेवाला कोई काम न करो, जिन कामों से देह आरोग्य रहे, उन्हीं की आदत डालो।

(२) अपने विचारों को ज्ञान-दृष्टि से देखो।

(३) बुरे विचारों को भुला दो।

(४) मनुष्य स्वभाव पहिचानने की चेष्टा करो।

(५) ऐसे लोगों के साथ उठो-बैठो, जिससे ज्ञान बढ़े।

(६) मित्रों से जो भली बातें सीखो, उन्हें काम में लाओ।

(७) बकवाद करना मत सीखो, मतलब की बात मुंह से निकालो, भेद की बात मन में रखने का अभ्यास करो।

(८) दूसरों को लाभदायक काम में लगा देखकर उनकी कार्यप्रणाली को ध्यान से देखो और आद्योपांत समझकर लाभ उठाओ।

(९) याददाश्त बिगड़ने न दो।

(१०) सब कामों में मूल तत्व को समझ लो।

(११) अपने मन के विचारों को सरल भाषा में लिखने का अभ्यास करो।

(१२) समय को मूल्यवान समझो।

चौथा मोर्चा

स्वास्थ्य और सपथ्य

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥"—वाग्भट्ट

× × ×

"सुखन ओंगह कुनद हकीम आग़ाज़ ।
या सर अंगुश्त सूये लुक्मा दराज़ ॥१॥
के ज़े नागुफ्त नश ख़लल ज़ायद ।
या ज़े ना ख़ुरद नश बजां आयद ॥२॥

—शेख़सादी

× × ×

"स्वास्थ्य ही प्रसन्नता है"

× × ×

"सुख धन से बहुत कम प्राप्त होता है, परन्तु स्वास्थ्य से सबसे अधिक"

— एक दूसरा विद्वान्

× × ×

"...Man may not become quite mortal, yet the duration of life and natural death will increase without, will have no assignable term, and may properly be expressed by the word indefinite."

Condorcets

एक विद्वान् का मत है, 'मनुष्य स्वाभाविक मौत से नहीं मरता, वह स्वयं अपने को मार लेता है।' यह बात यदि सब ही के लिये नहीं तो अधिकांश मनुष्यों के लिये बिलकुल ही ठीक है। यदि एक सहस्र मनुष्यों की परीक्षा की जाय, तो कम-से-कम नौ सौ मनुष्य ऐसे निकलेंगे, जो किसी-न-किसी रोग से पीड़ित होंगे। किसी को अजीर्ण की शिकायत है, तो कोई किसी वीर्य-रोग से पीड़ित है और कुछ नहीं तो सदैव किसी के माथे में दर्द ही बना रहता है। निःसंदेह ईश्वर की यह इच्छा कभी नहीं है कि संसार रोगों से पीड़ित रहे। प्रकृति हो हमें हमारे दुष्कर्मों का दण्ड देती है। हम पग-पग पर प्राकृतिक नियमों की अवहेलना करते हैं और प्रतिफल स्वरूप वहाँ ठोकर खाकर गिरते हैं। यह ईश्वरीय विधान है। यदि ऐसा न होता, तो नास्तिकों और कुकर्मियों को कभी सत्कर्म करने की प्रेरणा न होती।

संसार की कठिनाइयों और बाधाओं का स्वास्थ्य मनुष्य ही वीरता के साथ सामना कर सकते हैं। दुबले-पतले, अस्थि-पिंजरवत् मनुष्य को सफलता प्राप्त करने का कम अवसर मिलता है। जीवन-संग्राम में जितनी तंदुरुस्ती की आवश्यकता है। शरीर से अधिक दिमागी मेहनत करनेवाले व्यक्तियों को भी तंदुरुस्ती की आवश्यकता है स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता है। स्वस्थ शरीर का यही तात्पर्य नहीं है कि वह देखने में मोटा-ताज़ा ही हो और प्रो० राममूर्ति के-से आश्चर्य-जनक काम कर सके। जिसे बार-बार औषधियों की आवश्यकता नहीं पड़ती, जो खाया हुआ भोजन अच्छी तरह पचा लेता है, जिसका चित्त प्रसन्न रहता है, जिसका शरीर हल्का रहता है और जो अपना कार्य दत्तचित्त होकर कर सकता है, वही स्वस्थ है। वह अपने कार्य में प्रसन्न चित्त से जुट जाता है और उसे बीच में विश्राम लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

स्वास्थ्य ही से दीर्घायु होती है। यह स्पष्ट है कि स्वस्थ मनुष्य

रोगी मनुष्य से अधिक दिन जीवित रहता है। प्रायः अन्य देशवासियों की औसत आयु भारतवासियों की औसत आयु से अधिक होती है। भारतवासियों और अंगरेज़ों की आयु का मुकाबिला करने से ज्ञात होता है कि अंगरेज़ हमसे सत्रह वर्ष अधिक जीते हैं। अर्थात् उनकी औसत आयु चालीस वर्ष की होती है, जब कि हमारी कुछ तेइस वर्ष की ही। इसका कारण यही है कि वे लोग अपने स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान रखते हैं। मान लिया जाय कि किसी बस्ती में दो सुन्दर वाटिकाएं हैं। एक में वनस्पतियों, फूल और कोमल लताओं की रक्षा ठीक तरह पर की जाती है और समय पर आवश्यक पानी और खाद भी दी जाती है, परंतु दूसरे में उनकी रक्षा ठीक तरह पर नहीं की जाती, कभी तो जल और खाद बहुत अधिक दे दिया जाता है और कभी बिलकुल ही नहीं। इसका परिणाम यह होता है कि एक बाग़ की वनस्पतियाँ हरी-भरी लहरा रही होती हैं, और दूसरे बाग़ में पत्तियाँ तक मुर्झा जाती हैं, लताएं कुम्हला जाती हैं और वृक्ष भी सूख जाते हैं। यही बात स्वास्थ्य के संबंध में भी समझनी चाहिए।

अनुकूल, शुद्ध और सात्विक भोजन से, निर्मल जल और पवित्र वायु-सेवन से, स्वच्छ हवादार कमरों में रहने से, बल और पौरुष को हानि न पहुंचानेवाली दिनचर्या से, शारीरिक बल और पराक्रम बढ़ानेवाले व्यायाम से, शांतिमय पवित्र जीवन व्यतीत करने से मनुष्य चाहे अजर और अमर न हो जाय, परंतु उसकी आयु निस्संदेह बहुत बढ़ जाती है।

मनुष्य की आयु का निश्चय करना और उसके लिये एक सीमा बाँध देना असंभव जान पड़ता है। पीटरमर्फस ने भारत के इतिहास में लिखा है कि दुमीस डे सन् १५६६ में मरा, उस समय उसकी आयु १७१ वर्ष की थी। इफ़िन्घम १४४ वर्ष की उम्र में मरा। टामसंपार अपनी दीर्घायु के लिये इङ्गलिस्तान के इतिहास में प्रसिद्ध है। उसने अपना

पहिला विवाह अट्ठासी वर्ष की आयु में तथा दूसरा विवाह एक सौ बीस वर्ष की आयु में किया था। वह १४० वर्ष की उम्र में भी तेज़ दौड़ और हल चला सकता था, परिश्रम के अन्य कार्य भी कर सकता था गोसाईं लक्ष्मणपुरी, इमलहा मिर्ज़ापुर ११८ वर्ष के होकर मरे हैं! गाँवों में अनेक आदमी ऐसे मिलेंगे, जो सौ वर्ष पार कर चुके हैं और अब भी उनके अङ्ग ठीक हैं। दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविंद रानाडे आदि भी दीर्घायु होने के प्रमाण हैं। सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी कहते थे—"गत १६ वर्षों से मैंने नित्य के प्रत्येक काम के लिये एक समय निश्चित कर लिया है उसी समय पर खाता हूँ और ऑफ़िस जाता हूं। फल यह हुआ है कि गत सोलह वर्षों में मैं एक दिन के लिये भी बीमार नहीं हुआ।"

तुम्हारे पास करोड़ों का धन हो, सारा घर बच्चों से भरा पड़ा हो और बाहरी संसार तुम्हारी प्रतिष्ठा करता हो। परंतु यदि तुम सदैव रोगी रहते हो, तो यही सब विष के समान हो जाते हैं। यदि दूसरी ओर तुम निर्धन हो, तुम्हारा निवास-स्थान एक टूटी फूटी झोपड़ी में हो और बदन पर साबुत कपड़े भी न हों, फिर भी यदि तुम्हारा शरीर और मस्तिष्क स्वस्थ है, तो संसार तुम्हारे लिए आशा, आनंद और आमोद से परिपूरित हो सकता है। तुम रूखी रोटी खाते हो, परंतु उसमें भी तुम्हें स्वाद आता है और उसके रस से तुम्हारे शरीर का पोषण होता है।

किसी रोग के उत्पन्न होते ही उसका उपयुक्त उपचार करना चाहिए। परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हम सदैव रोगों का ही स्वप्न देखा करें। व्यर्थ ही रोग की शंका करना और उसमें चिंतायुक्त हो जाना, व्यर्थ ही एक रोग को खड़ा कर लेना है। कुछ लोग बैठे-बैठे यह विचार किया करते हैं कि मुझे अमुक रोग तो नहीं हो गया, वे निःसंदेह रोगों को निमंत्रण देते हैं। इन मनुष्यों का भोजन की भाँति

प्रतिदिन औषध-पान करना भी एक नियम हो जाता है। उन्हें जहाँ तनिक ज्वर होने का संदेह हुआ नहीं, कि उन्होंने बोतल-की-दवाइयाँ पेट में उतारना प्रारंभ कर दिया। वे नित्य नई-नई राम-बाण औषधियों और पेटेंट दवाओं के सूचीपत्र देखते रहते हैं, जिनके विज्ञापन बड़े भड़कीले होते हैं। 'कोई दवा तो उनमें-से पेट में पहुंचते ही सेरों खून पैदा कर देती है, कोई औषध ऐसी है, जो एक ही शीशी पीने से बुड्ढा जवान हो जाता है, कोई ऐसी लाजवाब हैं, कि उसका थोड़े दिन खाने से ही संसार के सारे रोग एक साथ चले जाते हैं और शरीर कंचन के समान चमकने लगता है।' अनेक बेचारे नवयुवक तो ऐसे भड़कीले विज्ञापनों के अनायास ही शिकार हो जाते हैं। वास्तव में बात तो यह है कि ऐसे डाक्टरों और वैद्यों से संसार का उपकार होना तो दूर रहा, प्रत्युत बड़ा अपकार होता है। ऐसे लोग रोगों को दूर करने के स्थान में इन्हें प्रज्वलित कर रहे हैं।

एक वैद्य ने एक वृद्ध सज्जन से पूछा—'आप कितने दिन और जीवित रहने की आशा रखते हैं?' उसने उत्तर दिया—'जब तक मैं किसी वैद्य को न बुलाऊं, तब तक।'' वास्तव में औषधियों का अधिक प्रयोग करने से मनुष्य सदा के लिये रोगी बन जाता है। इसलिये जब तक किसी विशेष रोग की आशंका न हो, तब तक औषध सेवन ही न करनी चाहिए। यदि औषध की आवश्यकता आ ही पड़े, तो केवल निपुण और अनुभवी वैद्य या डाक्टर की ही औषध सेवन करनी चाहिए।

यदि हम विरुद्ध आहार-विहार से बचे रहें, तो कभी हम रोगी ही न हों। आहार-विहार को ठीक करने से हमारे अनेक रोग दूर हो सकते हैं। चरक, सुश्रुत, हारीत, शारङ्गधर आदि आयुर्वेद के ग्रन्थों की सम्मति भी यही है। जगत्प्रसिद्ध डाक्टर लुईकूने दुनियां के सब रोगों की उत्पत्ति का एक ही कारण बतलाते हैं और उसी कारण को दूर करके उन्होंने सब प्रकार के रोगों को आराम कर दिखाया है।

उनकी भी यही सम्मति है कि विरुद्ध आहार-विहार से मलाशय में कुछ मल एकत्रित हो जाता है और वही मल फिर शरीर में जाकर नाना-नाना प्रकार की व्याधियाँ खड़ी कर देता है। उन्हीं व्याधियों को लोग भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। ज्वर क्या है? पहले मल पेड़ू के चारों तरफ जमा होता है और किसी समय अधिक सर्दी या गर्मी अथवा और किसी विरुद्ध आहार-विहार से उबल पड़ता है। शरीर के प्रत्येक भाग में पहुंच कर मल के छोटे-छोटे टुकड़े आपस में टकरा कर गर्मी पैदा करते हैं और सारे शरीर को गरम कर देते हैं।

निम्न प्रधान कारणों को दूर करने से ही हमारे देशवासी स्वास्थ्य-लाभ कर सकते हैं—

(१) ब्रह्मचर्य का अभाव; बाल-विवाह और बाल्यकाल की कुप्रवृत्तियाँ।

(२) अनुपयुक्त और अनियमित भोजन तथा वस्त्र।

(३) मस्तिष्क के बुरे विचार और सदाचार का अभाव।

(४) स्वच्छ जल और स्वच्छ वायु की कमी।

(५) स्त्रियों का पाशबद्ध होना।

ब्रह्मचर्य का अभाव

हिंदू शास्त्रकारों ने प्रत्येक मनुष्य के लिये कम-से-कम पचीस वर्ष पूर्ण ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करके विद्याध्ययन करने की आज्ञा दी है। जब-तक इस आदेश का पालन होता रहा, तब-तक भारतवर्ष में वशिष्ठ, विश्वामित्र, कण्व जैसे ऋषि, व्यास, मनु, पाणिनि जैसे विद्वान् और राम, कृष्ण, अर्जुन, भीम जैसे वीर होते रहे; परन्तु इस व्यवस्था के नष्ट होते ही भारतवर्ष में ऐसे पुरुष-पुङ्गवों के दर्शन करना अलभ्य हो

गया। बाल विवाह ने तो प्रचलित होते ही देश का सर्वनाश कर दिया है। बालक पति और बालिका पत्नी की सन्तान या तो जन्मते ही मर जाती हैं, अथवा कुछ वर्ष बाद संसार से उठ जाती हैं। यदि बची भी रहे, तो रोगी, मांस-हीन किसी प्रकार अपना अभागा जीवन व्यतीत करती हैं। इतिहासकार टालवाईस व्हीलर लिखते हैं, "जब तक भारत-वासी छोटी-छोटी बालिकाओं का विवाह छोटे छोटे बालकों से करते रहेंगे, तब तक उनकी सन्तान छोटे बच्चों से अधिक अच्छी दशा में कभी न पहुंच सकेगी। स्वाधीनता और स्वराज्य के आंदोलन में वे निस्तेज और बलहीन सिद्ध होंगे और राजनैतिक उन्नति का उपयोग करने के लिये वे किसी प्रकार की शिक्षा से भी समर्थ नहीं हो सकेंगे।"

हमारी सन्तान की शिक्षा और रहन सहन का ढंग कुछ ऐसा बिगड़ गया है कि उनका चरित्र सहज में ही बिगड़ जाता है। समाज में कुछ ऐसी कुप्रवृत्तियाँ फैल गई हैं, कि नवयुवकों के लिये चरित्रवान बनने के स्थान में चरित्रहीन बनने के अधिक अवसर मिलते हैं। इस प्रवाह से वही बचते हैं, जिनके या तो अभिभावक अधिक सचेत रहते हैं, अथवा अन्य स्थिति अनुकूल मिल जाती है। बचपन से ही वे अपने माता-पिताओं के मुख से अपने विवाह आदि की बातें सुनते हैं, जिनसे उनकी विषय-वासनाओं की प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। वे पारस्परिक सम्भोग की बातें समझने लगते हैं और समय से पहिले ही उनके वीर्य में उत्तेजना पैदा हो जाती है। इसके अतिरिक्त शिक्षणालयों में उनका ऐसे चरित्रहीन लड़कों और अध्यापकों से संयोग होता है, जिससे वे सहज में ही कुपथ में जा पड़ते हैं। यही कारण है कि भारत के अधिकांश नवयुवक पेशाब, पेचिश या बुखार के रोग से दुखी रहते हैं। यहाँ सारी दुनियाँ से अधिक पेशाब की बीमारियों से लोग मरते हैं। क्या यह धार्मिक हिंदुओं के लिये शोक की बात नहीं है?

अनुपयुक्त और अनियमित भोजन तथा वस्त्र

हमारा स्वास्थ्य आहार पर बहुत अवलम्बित है। आहार से ही हमारे सूक्ष्म और स्थूल शरीर बनते हैं। इसलिये भोजन के सम्बन्ध में विशेष सचेत रहना चाहिए। भोजन जितना ही सादा और पुष्टिकर हो, उतना ही अच्छा है। अधिक चटपटी, तीव्र, खट्टी, मीठी वस्तुएँ स्वास्थ्य के लिये हानिकर होता हैं। मिर्चा और खटाई जितनी कम हो सके, उतनी ही कम खानी चाहिए। खटाई और मिर्चा वीर्य को उत्तेजक और पतला करनेवाले हैं। विद्यार्थियों और ब्रह्मचारियों को तो इन्हें छूना भी नहीं चाहिए। याद रखिए मिर्चा, खटाई तथा ऐसे ही अन्य मसालों में कोई भी पोषक पदार्थ नहीं हैं। मीठे पदार्थों का भी कम उपयोग करना चाहिए, क्योंकि ये पेट की अँतड़ियों को निर्बल करनेवाले होते हैं। जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी होती है, उनके दस्तरखान अनेक मिष्ठान्न और चटपटी चीज़ों से सजे रहते हैं। जो ग़रीब हैं, वे रोज़ तो जैसा मिलता है, उसपर ही संतोष कर लेते हैं; परंतु उन्हें जब कभी किसी जेवनार में जाने का अवसर मिलता है, तो वे सारी कसर पूरी कर लेते हैं। आपने प्रायः बरातों और दावतों में अनेक मनुष्यों को कै, हैज़ा, अथवा बुखार में पड़ते देखा होगा यह सब अधिक खाने के ही परिणाम हैं। वे यह तो समझते हैं कि अधिक खाना स्वास्थ्य और विज्ञान की दृष्टि से हानिकर तो अवश्य है, परंतु वे स्वादिष्ट भोजन का लोभ संवरण नहीं कर सकते। वे विचार लेते हैं, अधिक-से-अधिक इसका परिणाम यह होगा कि तबीयत कुछ मलीन हो जायगी," परन्तु इस तनिक-सी बात की परवाह क्यों करनी चाहिए? यदि तुम निरोगी रहना चाहते हो, तो पक्के आज से ही समय पर और जितनी भूख हो, उतना ही भोजन करने का निर्णय कर लो।

मांस प्राकृतिक भोजन नहीं है। उसके साथ अनेक रोग पैदा

करनेवाले परिमाणु और यूरिक एसिड (जो स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकर हैं) शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। मांसाहारी मनुष्यों में गठिया, दर्दगुर्दा, रक्त-पित्त, प्रकृति के रोग, मंदाग्नि आदि व्याधियाँ जितनी अधिक पाई जाती हैं उतनी फलाहारियों में नहीं। यह बात पूर्णतया झूठ प्रमाणित हो चुकी है, कि अन्न खानेवाले मनुष्यों से मांस खानेवाले अधिक हृष्ट-पुष्ट होते हैं। इसके विपरीत अभी पाश्चात्य देशों में अनेक डाक्टरों ने प्रयोगों द्वारा मालूम किया है कि अन्न मांस से अधिक उपयोगी, शांतिप्रद, बलकारी और रोग के परिमाणुओं से रहित है। उनका कहना है कि तीन सेर मांस में जितने शरीर को पोषण करनेवाले पदार्थ हैं, उतने केवल एक सेर गेहूं अथवा एक सेर अरहर में होते हैं।

चाय, कहवा, शराब, भाँग, आदि शरीर के लिये अनावश्यक ही नहीं, बल्कि हानिकर हैं। एक डाक्टर ने प्रयोग द्वारा मालूम किया है, कि एक पौंड चाय के विष से कई सौ खरगोश मारे जा सकते हैं।

अच्छे विचारों और सदाचार का अभाव

मस्तिष्क के विचारों और भावों का प्रभाव भी स्वास्थ्य पर बहुत अधिक पड़ता है। जिनके विचार गंदे रहते हैं, जो अपने मस्तिष्क में आनेवाले विचार-प्रवाह पर शासन नहीं कर सकते, उनकी यह मस्तिष्क सम्बन्धी स्थिति उन्हें रोगी बनाने का एक कारण बन जाती है। सदैव ऊंचे विचारों का चिंतन करना और बुरे विचारों से बचना बड़ा कठिन है, परन्तु निरन्तर चेष्टा करने से हम अवश्य सफलीभूत हो सकते हैं। यदि हम अपने मन रूपी घोड़े की बागडोर हाथ से छोड़ दें और वायु में उसे सरपट दौड़ने दें, तो वह हमें कहीं-न-कहीं किसी गड्ढे में अवश्य ले जाकर पटक देगा। वही बागडोर यदि हमारे हाथ में रहे और हम उससे घोड़े को रोकते-थामते रहें, तो हम सीधे रास्ते सही-सलामत

घर पहुँच जाने की आशा रख सकते हैं। बड़े शोक की बात है कि हम अपने विचार प्रवाह को दूषित वायु से बचाने की बहुत कम चेष्टा करते हैं। जो वचन और कर्म से तो शुद्ध हैं, पर मन में जिनके अनेक कुविचार उत्पन्न होते रहते हैं, वे भी स्वप्नदोष, धातुक्षय आदि रोगों के शिकार बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त जिनके विचार अशुद्ध हैं, उनका आचरण भी ठीक नहीं रह सकता। धर्म-प्राण भारतवर्ष में चारों ओर आचरण-हीनता और व्यभिचार देखकर किसे हार्दिक पीड़ा न होगी? कलकत्ता के सोना-गाछी और मछुआबाज़ार, बम्बई के ह्वाइट मारकेट, लाहौर की अनारकली, लखनऊ का ख़ास चौक देहली का चावड़ी बाज़ार और बनारस की दालमंडी वेश्याओं से भरी पड़ी हैं। इनकी संख्या ४,७२,६६१ है, जिनकी वार्षिक आय ६२,४६,००,००० है। प्रत्येक वर्ष हम बासठ करोड़ रुपए के साथ-साथ अपने स्वास्थ्य की आहुति इस खुले व्यभिचार पर देते हैं और बदले में कोढ़, गर्मी सुज़ाक, क्षय आदि व्याधियों का पुरस्कार लेते हैं।

स्वच्छ जल और स्वच्छ वायु की कमी

† भारतवासी घनी बस्तीवाले गाँव के बीच एक मिट्टी की झोंपड़ी में रहते हैं, जिसके चारों तरफ़ गोबर आदि खाद का पहाड़ लदा रहता है और पास ही गंदे पानी का खंदक या तलैया भी होती है। अक्सर इसी तलैया का पानी पीने के काम में भी लाया जाता है। यह तो हुई गाँवों की बात, अब ज़रा शहरों का भी हाल सुनिए।

‡ "मामूली मकानों में एक छोटा-सा आँगन होता है और बाहर की कोठरी होती है, जो मर्दों की बैठक के काम आती है। अन्दर

---

† Prosperous British India.

‡ Sanitary measures of India.

जाकर बाहर की कोठरी से कहीं अधिक ख़राब, जिनमें न तो हवा आती है और न रोशनी ही—दूसरी कोठरियाँ होती हैं, जिनमें औरतें सोती हैं। इसी कच्चे सीड़ से भरे आँगन के एक कोनें पर पैख़ाना होता है। यह कभी भी साफ़ नहीं किया जाता। मैला उसी कोठरी के गहरे गड्ढे में खप जाता है। नाबदान का सब मैला, इसी आँगन में सड़ा करता है, या उन्हीं कोठरी के बगल के एक छोटे से गड्ढे में ख़तम होकर सड़ा करता है।" बड़े बड़े शहरों का हाल तो कुछ न पूछिए! एक-एक कोठरी में दस दस प्राणी किसी तरह जीवन बिताते हैं। इन लोगों का मुख देखने से मालूम होता है कि मानो उन्हें क्षय रोग हो रहा है। यह बात नहीं है कि सभी जगह मकानों या ज़मीन की कमी ही हो, परन्तु बात यह है कि नगर के हवादार और बड़े मकानों में रहने का सौभाग्य धनिकों को ही प्राप्त होता है। एक ओर उनके बड़े कमरे बारहों महीने बन्द पड़े रहते हैं और दूसरी ओर ग़रीब लोग मकान के अभाव से नरक-तुल्य जीवन बिताते हैं।

बहुत से मनुष्यों की आदतें इतनी गंदी होती हैं कि वे स्वयं ही अनेक रोगों के फैलाने के कारण बन जाते हैं। प्रायः देखा जाता है कि जिस कूएँ से लोग पीने के लिए पानी भर कर ले जाते हैं, वहीं अनेक मनुष्य नहाकर अथवा कपड़े धोकर बहुत-सा मैला कूएँ में बहा देते हैं, अथवा कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो अपने घर के सामने कूड़ा करकट डालकर गली या बाज़ार को गंदा कर देते हैं। उनके घर में भीतर जाकर यदि देखा जाय, तो सारी चीज़ें बेतरतीब इधर-उधर पड़ी हुई मिलेंगी। फ़र्श पर थूक देना, नाक छिनक देना अथवा छिलके बिखेर देना उनके लिये साधारण-सी बातें होती हैं। स्वास्थ्य पर इन बातों का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है।

जी है

स्त्रियों की पराधीनता

स्त्रियों के स्वास्थ्य की दशा पुरुषों से भी अधिक बुरी है। इसका कारण उनका पाशवद्ध जीवन है। पाश्चात्य महिलाओं का स्वास्थ्य भारतीय महिलाओं से बहुत अच्छा होता है। इसका कारण यही है कि वे अधिक स्वतन्त्र हैं विवाह के समय से मृत्यु तक वे संसार का प्रकाश बहुत कम देखती हैं। वे परदे में जीती हैं और परदे में ही मर जाती हैं। स्वास्थ्य के कुछ मोटे नियम हम नीचे देते हैं:—

(१) सूर्योदय से एक घड़ी पहिले उठकर ठंडे पानी से आँखें तर करो और एक गिलास जल पी लो।

(२) प्रातः और सूर्यास्त के पश्चात किसी बाग़ या बग़ीची में वायु सेवनार्थ जाओ और कहीं एकांत में बैठकर प्राणायाम करो।

(३) बबूल अथवा नीम की दतुवन करो और जीभ भी साफ़ कर लो।

(४) प्रति दिन कम-से-कम एक बार ताजे पानी से अवश्य स्नान करो। रोगी के अतिरिक्त किसी को गरम पानी से स्नान नहीं करना चाहिए।

(५) निश्चित समय पर सात्विक भोजन करो। खट्टी, मीठी, चरपरी चीज़ें बहुत कम खाओ। भोजन के पश्चात् कुछ फल खा सको तो अच्छा है।

(६) रात में भोजन मत करो। सोने से कम-से-कम चार घंटे पहिले भोजन कर लेना चाहिए।

(७) थकावट में भोजन मत करो।

(८) जो कुछ खाओ, खूब चबाकर खाओ।

(९) मांस, शराब, भंग, चाय, कहवा, तम्बाकू, चरस, गाँजा, मनुष्य के भक्ष्य नहीं हैं; इनसे बचो।

(१०) कच्ची भूख में मत खाओ। जितनी भूख हो, सदैव उससे कुछ कम खाओ।

(११) भोजन करते ही एक दम बहुत-सा पानी मत पीओ, घंटे घंटे भर बाद थोड़ा-थोड़ा पानी पीने से भोजन शीघ्र पचता है।

(१२) दिन में मत सोओ। रात्रि को बड़ों के लिये सात घंटे और बच्चों के लिये नौ घंटे सोना पर्याप्त है।

(१३) सोने के समय मुँह मत ढाँको और कमरे की खिड़कियाँ खुली रहने दो।

(१४) सदैव प्रफुल्ल चित्त रहो।

(१५) बेकार कभी मत बैठो, कुछ-न-कुछ करते रहो। संक्षेप में स्वच्छ विचार, स्वच्छ वायु, स्वच्छ जल और स्वच्छ भोजन से ही स्वास्थ्य प्राप्त होता है।

पांचवाँ मोर्चा

~:※:~

उच्चादर्श तथा महत्वाकांक्षा

"नाल्पीयसि निबध्नन्ति पदमुन्नतचेतसः।
येषां भुवनलाभेऽपि निःसीमानो मनोरथाः॥"

× × ×

"मानवों की जीवनी हैं यह हमें बतला रहीं,
अनुसरण कर मार्ग जिनका श्रेष्ठ हो सकते सभी।

काल रूपी मार्ग में पद चिह्न जो तजि जायँगे,
मानकर आदर्श उनका ख्याति नर जग पायेंगे ॥"

× × ×

"अपनी असलीयत से हो आगाह ऐ गाफ़िल कि तू,
क़तरा है लेकिन मिसाले बहरे बे पायां भी है।
क्यों गिरफ़्तारे तिलिस्मे हेंच मेकुयारी है तू,
देख तो पोशीदा तुझमें शौकते तूफ़ां भी है॥
तू ही नादां चंद कलियों पर क़नाअत कर गया,
वर्ना गुलशन में इलाज़े तंगिये दामां भी है ॥"

× × ×

न खुरद शेर नेम खुरदये सग।
गर बसख़्त बमीरद अन्दर ग़ार ॥ — शेख़ सादी

× × ×

Pitch thy behavier low, thy project high
So shalt thou humble and maganimous be,
Sink not in spirit, who aimeth at the sky,
Shoots higher much than he that aimeth a tree.
—George Herbert.

एक कहावत है 'संतोषी सदा सुखी' विद्वानों के मत में सन्तोष एक बड़ा गुण है। एक विद्वान से किसी ने पूछा, "दुःख क्या चीज़ है।" उसने कहा, "दुःख हमारे हृदय के असन्तोष की एक ज्वाला है।" निस्सन्देह उस विद्वान का कथन बहुत-कुछ सत्य है। हम देखते हैं, एक मनुष्य निपट निर्धनता की दशा में रोता है और दूसरा पूंजीपति होकर भी निश्चिंत नहीं होता, एक दो-चार गज़ ज़मीन के लिये तरसता है, तो एक भूपति होकर भी क्षुधित रहता है। इसी प्रकार संसार की प्रत्येक अवस्था के मनुष्य किसी न-किसी यातना से जर्जरित हैं

रहे हैं, परन्तु सन्तोष कहाँ करना चाहिए और कहाँ नहीं—यह भी समझ लेना आवश्यक है। आलस्य और अकर्मण्यता में सन्तोष का कुछ भी अंश नहीं है। मनुष्य में आगे बढ़ने की इच्छा न रहे तो संसार की तमाम उन्नति यहीं रुक जाय।

यदि हम पर्वत की एक चोटी को लक्ष्य करके बाण फेंके, तो हम उससे अधिक ऊंचा फेंक सकेंगे, जो कि एक पेड़ को लक्ष्य करके फेंका जाता है। हमारा उद्देश्य महान होना चाहिए और क्रमशः उस तक पहुंचने की चेष्टा करनी चाहिए। पहाड़ की चोटी पर यदि हमें चढ़ना है और यदि हम क्रमशः सावधानी से पग न बढ़ कर एक दम वहाँ पहुंच जाने की चेष्टा करेंगे, तो उल्टे मुंह गिर पड़ना आश्चर्य की बात नहीं है। दुःख वहीं होता है, जहाँ हम चाहते हैं कि हमारी महान आकांक्षा आज ही पूरी हो जाय। इसके अतिरिक्त निजी स्वार्थ के लिये जो आकांक्षा की जाती है, वह असन्तोषकारक होती है। परन्तु दूसरों के उपकार के लिये जो आकांक्षा होती है वह सफलता और असफलता दोनों ही दशाओं में सन्तोषप्रद होती है।

आदर्श वे सच्ची बातें हैं, जिन्हें मनुष्य अभी प्राप्त नहीं कर सका है, परन्तु जो भावी मेघ मंडल के उच्च स्थान में छिपी हुई हैं। ज्यों-ज्यों मनुष्य निश्चल दृष्टि से उनकी ओर बढ़ता है, त्यों-त्यों उसका जीवन ऊंचा उठता जाता है।

आदर्श ही सदाचार को गढ़ता है और जीवन को ढालता है। संपूर्ण जीवन आदर्श की ओर संकेत करता है। यदि वह तुच्छ है, तो जीवन भी तुच्छ है, यदि वह उच्च है, तो जीवन भी महान है। आकांक्षा रहित जीवन बिना नकेल के ऊंट के सदृश है।

एक प्रसिद्ध अमेरिकन से एक सज्जन ने पूछा, "आपके देश की संपत्ति और उन्नति का मूल कारण क्या है? उन्होंने गंभीरता पूर्वक

उत्तर दिया, 'श्वेतगृह'* । यदि वास्तव में देखा जावे, तो अमेरिका की उन्नति का कारण उक्त शब्द में ही भरा है। वहाँ के एक अति निर्धन-गृह में उत्पन्न होनेवाला नवयुवक भी 'श्वेत-गृह' में पहुंचने की आकांक्षा करता है। वह अपने ध्येय को प्राप्त करने के लिये जी-तोड़ परिश्रम करता है, वह अपने मार्ग के कंटकों को दूर करता हुआ आगे बढ़ता चला जाता है, वह कठिनाइयों और बाधाओं से तुमुल युद्ध करता है और अन्त में आनन्द और आश्चर्य के सम्मुख अपनी विजय देखता। लिंकन और गारफील्ड की सफलता का मुख्य कारण 'श्वेत-गृह' ही था। अमेरिका में अनेक नवयुवक 'श्वेत-गृह' में पहुंचने की आकांक्षा करते हैं। यद्यपि बहुत ही कम इस आकांक्षा में सफल होते हैं, परन्तु निश्चय ही यह उन्हें साधारण श्रेणी से अधिक ऊंचा उठा देने में सहायक होता है।

आकांक्षा ही मनुष्य को सफलता की सीढ़ी पर प्रत्येक पग चढ़ने की प्रेरणा करती है। आप अमेरिका की सड़क पर किसी समाचार पत्र बेचनेवाले लड़के से वार्तालाप करें, तो आपको विदित होगा कि वह क्रमशः संवाद-दाता, सम्पादक, मुख्य सपादक फिर पत्र का मालिक बनने का आकांक्षा रखता है। उसे ज्योंही कुछ समय मिलता है, वह अपने ध्येय में सफलता प्राप्त करने के लिये आवश्यक गुण और शिक्षा प्राप्त करने की चेष्टा करता है। इसके परिणाम-स्वरूप आज अमेरिका के अनेक अग्रगामी पत्रों के सम्पादक तथा स्वामी वे हैं, जो कभी सड़कों पर दो-दो सेंट में समाचार-पत्र बेचते फिरते थे। इसी तरह आप देखेंगे कि प्रत्येक व्यवसाय की उन्नति की दौड़ में आगे निकलने के लिये लोग कठिन परिश्रम में लगे हुए हैं। उस देश में ऐसा कोई भी मनुष्य दिखाई न देगा, जिसकी उन्नति करने की आकांक्षा का अन्त आ गया हो; उसने वही प्राप्त कर लिया हो, जो वह चाहता हो।

* अमेरिका के राष्ट्रपति का निवास-स्थान।

इस संसार में जो मनुष्य थोड़े ही पर संतोष (तृप्ति भी) कर लेता है, जो समझ लेता है, कि वह तुच्छ बातों के लिये बनाया गया है, अथवा अपने जीवन की साधारण गति पर ही विश्राम लेने के लिये ठहर जाता है; वह कभी कोई महान कार्य नहीं कर सकता। सफल वे ही होते हैं, जो विचार लेते हैं कि ईश्वर ने हमें महान कार्य करने और महान बनने के लिये भेजा है।

थीरो ने एक बार एक मनुष्य से पूछा—"क्या तुमने कोई ऐसा मनुष्य देखा अथवा सुना है, जिसने तमाम जीवन सच्चे हृदय से एक ध्येय को प्राप्त करने के लिये परिश्रम किया हो और उसके प्राप्त करने में सफल न हुआ हो? यदि एक मनुष्य निरन्तर अपने हृदय में उच्च आकांक्षाएं रक्खे, तो क्या वह ऊपर नहीं उठता? क्या किसी मनुष्य ने स्वयं धीरता, सत्य, प्रेम पर चलकर यह मालूम किया है कि वे सब व्यर्थ हैं?

पाश्चात्य उन्नति का मुख्य कारण यह है कि वे आकांक्षावादी हैं और उन्हें अपने भविष्य पर पूरा विश्वास है। वहाँ निर्धन व्यक्तियों के उन्नति के पथ में कंटक नहीं बिछे हैं। उन देशों में निर्धनता बाधा देने और कठिनाई उपस्थित करने के स्थान में, उत्साह और आकांक्षा बढ़ाती है। अमेरिका के कालिजों में ८० प्रतिशत आप उन बालकों को पाएंगे, जो खेतों और गाँवों से आए हैं। वहाँ की ६० प्रतिशत गगनभेदी अट्टालिकाओं के स्वामी वे हैं, जो ग़रीबी के पालने में पले हैं। यदि हम यह कहें कि आज अमेरिका का विशाल धन उनके हाथों में है, जिनका प्रारम्भिक जीवन झोंपड़ियों में रहते और कारखानों में कोयले झोंकते बीता है, तो यह अत्युक्ति नहीं होगी। यदि आज आप अमेरिका के बड़े-बड़े कुबेरों की जीवनियों को मालूम करेंगे, तो आपको विदित हो जायगा कि वे निर्धन-गृह में उच्च आकांक्षा लेकर उत्पन्न हुए थे। वे आज उसी उच्च आकांक्षा और निरन्तर परिश्रम के बल पर ही उस

पद पर पहुंच गए हैं। लिंकन का जन्म एक लकड़ी चीरने की कोठरी में हुआ था और गारफील्ड ने सूर्य की किरणें पहिले पहल एक फूस की झोंपड़ी में देखी थीं, परन्तु उन्होंने प्रारम्भ में ही ऊंचा उठने का निश्चय कर लिया था। आपदाओं की घटाएं, निराशा की लहरें, भूख-प्यास के बखेड़े, असफलताओं के भंवर और कठिनाइयों की आंधी आईं, परन्तु वे अपने मार्ग पर सुमेरु की भाँति अचल रहे। यदि वे अपने ध्येय की ऊंचाई देख, ठिठक कर रह जाते; तो क्या वे एक दिन अमेरिका के राष्ट्रपति निर्वाचित हो 'श्वेत-गृह' पर अधिकार कर पाते ?

भारतवासियो ! क्या तुम्हारे आज-कल के बालक भी ऐसे ही आकांक्षापूर्ण निश्चयी और दृढ़ परिश्रमी होते हैं ? उनमें से कितने भारतीय 'श्वेत-गृह' पर अधिकार करने की आकांक्षा करते हैं ? आप कहेंगे, "आज उन्हें आकांक्षा करने का अधिकार ही नहीं है। प्रत्येक बड़े पद पर 'भारतवासियों की आवश्यकता ही नहीं है' का नोटिस वोर्ड लटका हुआ है। वे आकांक्षा ही क्या करें ? उनके लिये उनके ही देश में प्रत्येक मार्ग बन्द हैं।" बिल्कुल ठीक, पर इस निराशा का कारण परतंत्रता ही है न ? फिर यही बताइए इस परतंत्रता को तोड़ने का ध्येय ही सामने रखकर कितने आगे बढ़ते हैं ?

आप यहाँ के किसी स्कूल में जाइए और विद्यार्थियों से पूछिए कि शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात उनका ध्येय क्या है ? इसपर आपको विदित होगा कि अधिकांश लड़कों ने कभी इसपर विचार ही नहीं किया है। उनमें से ९० प्रतिशत बालकों के विचार में ही यह कभी नहीं आता कि वे पन्द्रह रुपए से तीस रुपए तक मासिक वेतन प्राप्त करनेवाले क्लर्क के अतिरिक्त और कुछ बन सकेंगे ? यदि उन्हें इतना ही मिल जाय, तो वे उसे धन्य समझते हैं। कालेज के विद्यार्थियों का 'श्वेत गृह' तहसीलदारी या डिप्टी कलेक्टरी ही है। यदि उनमें-से कोई भी उन्हें प्राप्त हो जाय, तो वे अपने को 'भाग्यशाली' और 'सफल' समझते हैं।

परन्तु आज भारतवर्ष में कितने युवक हैं, जो लिंकन, गारफील्ड और दादाभाई नौरोजी की तरह उच्च आदर्श सम्मुख रखकर कठिनाइयों, बाधाओं और निराशाओं से तुमुल युद्ध करते हैं।

नवयुवकों में ही क्यों, यही दशा आप हर प्रकार के लोगों में पाएंगे। जो पूंजीपति हैं, वे व्याज अथवा कच्चे माल को बाहर भेजकर ही संतुष्ट होते हैं। क्या हमारे देश में ऐसे मनुष्यों की कमी है, जो बाप-दादों की छोड़ी हुई सम्पत्ति के व्याज पर जीवन व्यतीत करते हैं और उसे 'आराम' की ज़िंदगी समझते हैं? आज देश में अनेक उद्योग-धंधों के लिये मैदान खाली पड़ा है, कच्चे माल की भी कमी नहीं है। विदेशी तो यहाँ आकर उसका पूरा-पूरा लाभ उठा रहे हैं, परन्तु भारत-वासी उनके अधिकार में काम करने, उन्हें कच्चा माल देने और दलाली करने में ही संतुष्ट हैं। संतोष एक गुण है, परन्तु अकर्मण्यता के साथ मिलकर यही एक दोष हो जाता है। क्या भारतवर्ष में ऐसे व्यवसायी आपको मिलेंगे, जो अमेरिका के व्यवसायियों की भाँति अपने व्यवसाय उच्चतर शिखर पर पहुंचाने के लिये नई युक्तियाँ, उपायों और आविष्कारों के खोजने में दत्तचित्त रहते हों?

एक बार रस्किन ने अपने एक दुखी मित्र से कहा था, "ईश्वर ने हमें संसार में विजय, सफलता और उन्नति प्राप्त करने के लिये भेजा है, न कि माथे पर हाथ रखकर किसी दैवी सहायता की राह देखने के लिये. अपने सम्मुख उच्च आदर्श और अपने ऊपर विश्वास रखते हुए उसे प्राप्त करने की चेष्टा करते जाओ और तुम एक दिन ऊंचे हो जाओगे।" जो मनुष्य संसार में रहते हैं, उनके लिये समाज में ऊंचा पद प्राप्त करने की आकांक्षा करना उनका कर्त्तव्य है। जिन्हें सांसारिक सुख, समाजोन्नति, यश किसी की भी आकांक्षा नहीं है, उन्हें तो जंगल में जाकर ईश्वर के ध्यान में लीन हो जाना चाहिए।

हमें अपना ध्येय निश्चित करते समय बड़ी सावधानी को आ.र-

श्यकता है। एक दम आकाश के तारे तोड़ने दौड़ना मूर्खता है। मकान की छत पर पहुंचने के लिये कोई एक छलांग मारे, तो वह अवश्य ही गिरेगा। परन्तु एक-एक सीढ़ी चढ़ने से वह सुगमता से वहाँ पहुंच सकता है। दूसरी बात जो ध्येय निश्चित करते समय ध्यान में रखनी चाहिए, वह यह है कि कुबेर कार्नेगी, फोर्ड या राकफ़ेलर के समान धन प्राप्त करने की आकांक्षा ही केवल उच्च आकांक्षा नहीं है। उससे भी श्रेष्ठतम आकांक्षा भगवान बुद्ध, हजरत ईसा और महात्मा गांधी के कार्यों में छिपी हुई है। उस मनुष्य का स्मरण करो, जो एक लंगोटी लगाए हुए संसार में शांति, समता और अहिंसा का साम्राज्य स्थापित करने की उच्च आकांक्षा लिए डोलता है। यदि कोई मनुष्य धन, मान और पद के स्थान में लोकोपकार, स्वार्थ-त्याग और देश-सेवा में उच्चतम श्रेणी प्राप्त करने का निश्चय करे, तो वह सफलता की ओर और भी तीव्र गति से बढ़ सकेगा। तीसरी बात यह है कि जिसको प्राप्त करने के लिये तुम सबसे अधिक परिश्रम कर सको, उसी को प्राप्त करने की आकांक्षा करो। एक विद्वान का वाक्य है—'आकांक्षा कर लेना, पर उसके प्राप्त करने के लिये कुछ परिश्रम न करना नवयुवकों के मस्तिष्क का एक रोग है।'

हमारे अनेक पाठक संभव है हमारे उक्त विचार से सहमत न हों। संभव है वे लेखक से यह भी कहें—"महाशय! महत्वाकांक्षा बड़े ही अनर्थों की जड़ है। आप देखते नहीं हैं कि बड़प्पन की इच्छा ने ही सारे संसार को अशांति के कुण्ड में डाल दिया है। योरोप के वर्तमान संघर्ष की जड़ भी यही दुष्टिनी ही है। नैपोलियन की महत्वाकांक्षा ही लाखों मनुष्यों के प्राण लेने की कारण हुई है। अनेक मनुष्य इसी के कारण कभी सन्तोष और शांति का अनुभव नहीं कर सके।"

हम उनके शंका-समाधान के लिये कह चुके हैं और कह देना चाहते हैं कि महत्वाकांक्षा केवल रुपयों के ढेर इकट्ठा करने, उदय भरत:

के साम्राज्य स्थापित करने और पद तथा प्रशंसा में ही नहीं है। यह तो अधम श्रेणी की महत्वाकांक्षा है। ज्ञान और शिक्षा का उपार्जन करना, दुखियों और निर्बलों को सहायक होना, संसार में सार्वभौमिक शांति का स्थापन करना, दबे हुए राष्ट्रों को अत्याचार से निकालना, हजारों भूखों को अन्न देना, ईश्वरोपासना करना क्या महत्वाकांक्षा नहीं है? जब हम हर हिटलर नैपोलियन, सिकन्दर और सीज़र को महत्वाकांक्षा शील कह सकते हैं, तो क्या भगवान रामचन्द्र, राजा शिवि, ऋषि वशिष्ठ और महात्मा गांधी महत्वाकांक्षाशील नहीं कहे जा सकते? अन्तर केवल इतना ही है कि एक महत्वाकांक्षा हेय है, दूसरी प्रशंसनीय? यदि संसार में युद्ध की दुंदुभी बजा देना महत्वाकांक्षा है, तो वहाँ शान्ति स्थापित करना भी महत्वाकांक्षा मानी जा सकती है।

दूसरी बात यह है कि महत्वाकांक्षा कर्म में ही होनी चाहिए, न कि फल में। तुम इस बात की आकांक्षा करो कि तुम इस संसार में महान कार्य करने में समर्थ हो, परन्तु यह क्यों इच्छा रखते हो कि तुम्हें उसका फल भी महान ही मिले? संसार तुम्हारे पैरों को पूजने लगे, तुम्हारी गिनती महात्माओं में हो जाय। असन्तोष तभी होता है कि जब तुम तुच्छ कार्यों के फल-स्वरूप भी महान परिणाम चाहते हो और जब तुम उस फल को प्राप्त करने में असमर्थ होते हो, तभी तुम्हें असन्तोष होता है। यदि तुम धन प्राप्त करने की अभिलाषा इसलिये करते हो कि तुम ग़रीबों और अनाथों की सहायता करना चाहते हो, तो तुम्हारी महत्वाकांक्षा बुरी नहीं है।

छठवाँ मोर्चा

~:*:~

प्रफुल्लता और आकर्षण शक्ति

'अज्ञस्य दुखोघ मयं ज्ञस्या नन्द मयं जगत् ।
अन्धं भुवन मन्धस्य प्रकाशं तु सचक्षुषः ॥

× × ×

'सुख को देख कभी मत मन में जाना का तू फूल,
दुख को देख न घबड़ाना तू वह है सुख का मूल ।
संकट आवे उसे झेलना साहस उर में लाय,
धीरज धरकर सहते रहना कभी न करना हाय ।'

—देवीप्रसाद

× × ×

'न बा शुतर बा सवारम न चों उश्तर ज़ेर बारम ।
न खुदावंदे रअय्यत न गुलाम शहरयारम ॥
गमे मौजूदो परेशानी मादूम नदारम ।
नफ़से मीज़नम आसूदह ओ उम्रे मोर गुज़ारम ॥

× × ×

'मैं ऐसे प्रसन्न स्वभाव, जो सदैव प्रत्येक वस्तु को अच्छे दृष्टिकोण से देखने का आदी है-प्राप्त करना अधिक पसंद करूंगा. बनिस्बत

इसके कि मैं दस हजार पौंड वार्षिक आय की जायदाद का स्वामी बन जाऊं।'

—ह्यूम

× × ×

'प्रसन्नता प्रत्यक्ष और शीघ्रतम लाभ है। वह अन्य सिक्कों की तरह केवल बैंक का सिक्का ही नहीं है, वरन प्रत्यक्ष सिक्का है। यह सत्य है कि धन प्रसन्नता का सबसे छोटा साधन है और स्वास्थ्य सबसे अधिक।'

——स्कोफेनर

× × ×

'Mirth is the medicine of life,
It cures its ills, it calms its strife,
It softly smooths ths brow of care,
And writes a thousand graces there.'

संसार में प्रायः दो तरह के मनुष्य दिखलाई पड़ते हैं। एक वे हैं, जो सदा रोनी सूरत बनाए रहते हैं, तनिक-सी आपत्ति पड़ने पर उनका कलेजा बैठ जाता है, घर-बाहर चौबीसों घंटे उन्हें ज़रा-ज़रा-सी बातों की चिन्ताएं दबाए रहती हैं। वे जब मित्रों में बैठते हैं, अथवा अपने बाल-बच्चों से बातचीत करते हैं, तो हंसने की चेष्टा करते हैं, परन्तु हंसी उनके आधे मुंह से आकर ही लौट जाती है। जीवन भर में उन्हें खुलकर हंसने के बहुत ही कम अवसर प्राप्त होते हैं। वे न तो अपने कुटुम्बियों के लिये ही आकर्षक होते हैं, न अपने मित्रों के ही लिये। उनका जीवन नीरस और दबा हुआ होता है। दूसरे वे लोग हैं, जिनपर चारों ओर से आपत्ति के पहाड़ टूट पड़ते हैं उन्हें पग-पग पर ठोकरें लगती हैं, वे उठते हैं और गिरते हैं; परन्तु उनके मुख की हास्य-रेखा विलीन

नहीं होती। वे अपनी मधुर-मूर्ति से जहाँ जाते हैं, वहाँ लोग उनकी ओर आकर्षित होते हैं और अनेक मनुष्य उनके पास बैठकर शांति का अनुभव करते हैं।

सभी मनुष्य हँसी-खुशी से रहना चाहते हैं; परन्तु बहुत ही कम ऐसे लोग हैं, जो उसे प्राप्त कर पाते हैं। इसका कारण यह है कि बहुत ही थोड़े लोग इसे पूर्ण महत्वता की दृष्टि से देखते हैं और उसे प्राप्त करने की अविरल चेष्टा करते हैं, क्योंकि केवल विचार करने से ही मनुष्य अपनी आदतों का बदल नहीं सकते। उसे रोकने के लिये उन्हें उनसे घोर युद्ध करना पड़ता है। क्रोधी मनुष्य क्रोध उतर जाने के पश्चात् पश्चात्ताप करते हैं और चाहते हैं कि दूसरी बार क्रोध न आवे, पर फिर भी कोई विरुद्ध बात हो जाने पर क्रोध को रोकना असंभव हो जाता है। इसलिये उसपर सफलता प्राप्त करने के लिये निरन्तर उससे युद्ध करने की आवश्यकता है। धीरे धीरे उसका क्रोध बहुत कमज़ोर हो जाता है और फिर वह उसपर शासन कर सकता है।

जो मनुष्य सदैव प्रफुल्ल चित्त रहता है, वह न केवल स्वयं ही उसका लाभ उठाता है, बल्कि अनेक दूसरे लोग भी उसके पास बैठकर एक बार के लिये संसार की सारी बाधाएं, चिन्ताएं और शोक भूल जाते हैं। सर जान लब्बक का मत है—"यदि मनुष्यों को प्रफुल्लित रहने की शिक्षा और अपने कर्तव्य का आनन्द सिखला दिया जाता, तो यह संसार अधिक उज्ज्वल और श्रेष्ठ हो जाता। स्वयं प्रसन्न रहना दूसरों को प्रसन्न करने का एक सरल साधन है।" कार्लायल कहता है—"इसलिये हमें ऐसा आदमी दो, जो अपने कार्य को हंसता हुआ करता है।" प्रसन्न चित्त मनुष्य दूसरे के हृदय को आसानी से जीत लेता है। बहुत-से भद्दी शक्ल के मनुष्य भी इस गुण के कारण सबके प्रिय हो जाते हैं। प्रसन्न चित्त मनुष्य की याद हमें बहुत दिन तक बनी रहती है।

अनेक मनुष्यों का हृदय जब भारी और दुखी होता है, तब वे

किसी हंस-मुख प्रसन्नचित्त मनुष्य के पास जा बैठते हैं। उसकी बातें उनके हृदय के घाव के लिये मरहम का काम देती हैं। एक सहृदय कवि की भावना है-"यदि मैं हास्य के फव्वारे को किसी तरह ढूंढ़ पाऊं, तो अपनी सारी शक्ति लगाकर भी उसका मुख संसार की ओर फेर दूं और झोंपड़ी, महल, नगर, और वन सभी को प्रफुल्लता की वर्षा से इतना सराबोर कर दूं कि वे कभी न सूखें। यदि कहीं मुझे ऐसा संदूक मिल जाय, जिसमें सब शोक, चिंता और निराशा बन्द की जा सकें, तो बस मैं उसे भरकर महासागर के अथाह जल में प्रवाहित कर दूं।"

हंसमुख और प्रसन्न मनुष्य जहाँ कहीं जाता है, वहीं शीघ्र ही उसके अनेकों मित्र बन जाते हैं। मनहूस और चिड़चिड़े मनुष्य से सभी भागते हैं। उससे जो कोई बातें करता है, उसके मन की शांति जाती रहती है और कभी-कभी व्यर्थ ही झगड़ा हो जाता है। हंसमुख आदमी संसार के कष्टों को कम करते हैं. वे अपने पड़ोसियों पर अपने मुख से पुष्पों की वर्षा करते हुए अपने काम पर जाते हैं, परन्तु मुर्झाई हुई तबियतवाले न केवल खुद मरे से रहते हैं, परन्तु दूसरों को भी दुखी करते हैं। इसलिये प्रत्येक मनुष्य का नैतिक कर्त्तव्य है कि वह प्रसन्न चित रहें।

हमें सदैव प्रत्येक कार्य के अच्छे भाग की ओर दृष्टि रखनी चाहिए। तुम्हें जो कुछ भी कार्य मिले, उसी में प्रसन्नता प्राप्त करने की चेष्टा करो। बहुत-से आदमी समझ लेते हैं कि उनका भविष्य तो तवे की तरह काला है, उनके भाग्य में तो केवल रोना-झींकना ही बदा है। उन्हें इस जीवन में तो कभी सुख नहीं मिल सकता है। उनके लिये यही कह देना काफ़ी होगा कि, ईश्वर की इच्छा यह कदापि नहीं है कि कोई भी आदमी दुखी रहे। वह तो अपनी संतान को सुखी और प्रफुल्लित देखना चाहता है; परन्तु हम अपने ही कर्मों से अपने को दुखी और रंजीदा बनाते हैं।

बच्चों के मुख पर दुःख अथवा निराशा के चिह्न होना बहुत ही अप्राकृतिक है। बच्चों को हंस-मुख और प्रफुल्लित बनने की शिक्षा देनी चाहिए। उनके सम्मुख ऐसी बातें, जैसे 'संसार में दुःख-ही-दुःख है,' 'संसार निस्सार है' आदि कदापि न करनी चाहिए। इससे उनके विकास में बाधा पहुंचती है।

बहुत-से आदमी थोड़ी-सी कठिनाई आ जाने पर घबड़ा जाते हैं। ज़रा-से माथे के दर्द होने से वे घर भर का सर पर उठा लेते हैं। तनिक-सी असफलता उनके जीवन को भार बना देती है। वह आगे चलकर ठोकरों पर ठोकरें खाते हैं। वे ही आदमी अपने जीवन का सार्थक करते हैं, जो विपत्तियों के बादल देखकर चिंतित नहीं होते, वे कठिनाइयों से खेल खेलते हैं और उनका मुख का भाव असफलता में भी नहीं बिगड़ता। वे हमेशा छाती फुलाकर आगे चलते हैं, उनकी गर्दन हमेशा ऊपर रहती है, उन्हें काँटों का बिछौना भी फूलों-सा मुलायम प्रतीत होता है। जेकुक नामक एक अमेरिका निवासी सज्जन कारोबार करते थे, परन्तु एक समय वे अकस्मात् इतने निर्धन हो गए कि उनके पास एक पैसा भी न रह गया, परन्तु फिर भी वह उत्साह से अपने काम को करने लगे और फिर शीघ्र ही धनी हो गए। उन्होंने छः हजार रुपए का पहिला क़र्ज़ चुका दिया और उनका घर फिर पहले की तरह धन से पूरित हो गया। जब उनसे पूछा गया कि आपने अपनी खोई हुई संपत्ति कैसे प्राप्त कर ली, तब उन्होंने कहा—"मैं कभी आशा नहीं छोड़ता; विपत्ति के बादलों से मैं नहीं घबड़ाता, बल्कि हंसता-हंसता उनका सामना करता हूं।"

बहुत-से आदमी संजीदा रहना अधिक पसंद करते हैं। उनके विचार में हंसना, अथवा मुस्कराना असभ्यता है। वे भोजन करते समय भी बहुत संजीदा रहते हैं। यदि इनके मतानुसार संसार में परिवर्तन हो जावे, तो गलियों और बाज़ारों से यह चुलबुलाहट, आनन्द और हंसी

उड़ जावे और उनके स्थान में चिंतित, संजीद' और मुरझाए हुए चेहरे दिखाई पड़ने लगे।

खुलकर हंसने से स्वास्थ्य को बहुत लाभ पहुंचता है। यह फेफड़े, पेट आदि आंतरिक अवयवों का व्यायाम है। इससे हृदय अधिक तेज़ी से काम करने लगता है और रक्त तीव्रता से दौड़ने लगता है। हंसी आँखों को तेजस्वान करती है, छाती को फैलाती है और शरीर के प्रत्येक अंग को गरमी पहुँचाती है।

कार्लायल का मत है—"जो आदमी हंसते हंसते अपना काम करता है, वह एक काम को उसी समय में अधिक उत्तम रीति से कर सकता है। जो गाते हुए अपना मार्ग तय करता है, उसे थकावट नहीं मालूम पड़ती। प्रफुल्लता की शक्ति आश्चर्यजनक है।"

कठिन परिश्रम करते समय बीच-बीच में खुलकर हंस लेने से मस्तिष्क को बहुत-कुछ विश्राम मिल जाता है, हंस लेने से मस्तिष्क की सारी थकावट दूर हो जाती है और फिर काम में दिल लग जाता है। लिंकन अपने समीप सदैव एक मनोरञ्जन की पुस्तक रखता था और जब वह अपने काम से थक जाता अथवा किसी बात पर उसे क्रोध आ जाता, तो वह उस पुस्तक के एक दो पृष्ठ पढ़ लेता था।

प्रसन्नता के लिये सहनशीलता की आवश्यकता है। जो ज़रा-ज़रा सी बात पर लड़ाई झगड़ा करने का तैयार रहते हैं, वे प्रसन्न कैसे रह सकते हैं? प्रसन्न वही रह सकते हैं, जिनमें दूसरों के अपराध को क्षमा कर टाल देने की शक्ति है। प्रतिहिंसा की ज्वाला जिनके हृदय में नहीं सुलगती, वही प्रसन्न हैं।

यदि तुम्हें कोई गाली दे, तो तुम उसको अपने मस्तिष्क में प्रवेश मत होने दो। यदि तुम्हें किसी कार्य में असफलता हुई है, तुम्हारी दूकान का काम फेल हो गया है, तुम्हारी सारी इज़्ज़त धूल में मिल गई है,

तो भी तुम सब भूलकर फिर नवीन रीति से काम प्रारम्भ कर दो !

× × × ×

यदि तुम्हारी बातों में इतनी मधुरता और सरलता है कि तुम सहस्रों मनुष्यों को अपनी ओर खींच सकते हो, तो वास्तव में तुम्हारे हाथ में एक बड़ी शक्ति है। हमारे पास अनेक ऐसे उदाहरण हैं कि अनेक मनुष्यों में न तो कोई भारी विद्वता ही है और न कोई दूसरा गुण ही, परंतु उनकी बातों में इतनी सरलता और मधुरता है कि, वे सहस्रों मनुष्यों को अपने हाथ के इशारे से नचाते हैं। तुम कोई भी काम करो, यदि तुम अपने विचारों को उचित रीति से नहीं प्रकट कर सकते, तुम्हारी भाषा रूखी सूखी होती है, तो तुम सदैव असुविधा में रहोगे।

एक लेखक का मत है "इस संसार में जो काम वाणी कर सकती है, वह अस्त्र-शस्त्र, धन-जन और बल-वीरता से नहीं हो सकता। जो काम महमूद, चंगेज़, नादिर और उनके अनेक मतानुयायियों ने तलवार से न कर पाया, वह श्री स्वामी शंकराचार्य ने वाणी से कर दिखाया। उन्होंने डेढ़ करोड़ हिंदुओं को रुह के ज़ोर से मुसल्मान बनाया, शंकराचार्य ने बीसों करोड़ बौद्धों को चिन्नायल से वैदिक धर्म में परिवर्तित कर दिखलाया'''भरतपुर-नरेश माननीय वीर वृद्ध बिहारीसिंह की वाणी का ही प्रताप था कि उनके किले के थोड़े-से लोग कई दिन तक बिना विश्राम लिए हुए ज़बर्दस्त विरोधी सेना पर लगातार ओलों की तरह गोले बरसाते रहे। क्या यह वाणी का प्रताप नहीं था, जो मिस्टर बेन ने अमेरिका में किया। वाणी के बल से ही चार्ल्स ब्रिडला ने ब्रिटिश पार्लियामेंट से राजभक्ति की शपथ लेने की प्रथा एकदम हटवा दी।"

वास्तव में इस आधुनिक सभ्यता के युग में किसी बात का इतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना एक अच्छी वक्तृता का पड़ता है। यदि सुवक्ता चाहे, तो दम-की-दम में सारे संसार में युद्ध की चिनगारी

लगा दे देश के-देश और जाति-की-जाति को एक दम में उलट पुलट कर दे। पंडित मदनमोहन मालवीय जब कोई स्पीच देने खड़े होते हैं, तो सारी जनता उनकी मुट्ठी में हो जाती हैं। कभी वे उन्हें रुलाते हैं, तो कभी उनमें उत्साह भरते और कभी उन्हें हंसाते हैं। वे अपनी वक्तृत्व-शक्ति द्वारा ही हिंदू विश्वविद्यालय के लिये विशाल धन एकत्रित कर सके हैं।

हमें अपनी आकृति और बातचीत के ढंग का इस तरह गढ़ना चाहिए कि लोगों के चित्तों को हम आकर्षित कर सकें। मूर्खों के सम्मुख यदि तुम गूढ़ सिद्धांतों की बातें करने लगो, तो उनका चित्त तुम्हारी ओर से हट जायगा। वे तो सीधी-सादी भाषा में प्रारम्भिक उपदेश को ही समझ सकते हैं। आप उन्हें मनोहर उपदेश-पूर्ण कहानियाँ सुनाइए, इसमें उनका मन लग जायगा और वे आपको शिक्षा ग्रहण करने लगेंगे। महात्मा स्टेड से मिलनेवालों का दल नित्य नदी के प्रवाह की तरह सवेरे से संध्या तक आता रहता था। संसार के भारी-से-भारी और छोटे-से-छोटे मनुष्य मिलने की इतनी इच्छा किसी से नहीं रखते थे, जितनी कि स्टेड से रखते थे। हर एक ही तरह के आदमी उनमें आते थे। कोई समुद्र के पानी से सोना निकालने की तरकीब पूछने के हेतु आते थे, कोई राजनीतिक उद्देश्य से आता और कोई धर्म की बातें पूछने आते थे। स्टेड से जिस तरह से जो प्रश्न किया जाता था, उसका उत्तर उसी रीति से शिक्षा लिए हुए होता था। सब ही उनकी बातों से सन्तुष्ट होकर जाते थे।

जिस बात में स्वयं तुम्हारा विश्वास नहीं है, उस बात में तुम दूसरों का विश्वास उत्पन्न नहीं कर सकते, बनावटी असत्य बात अत्युत्तम होते हुए भी श्रोताओं पर प्रभाव नहीं डाल सकती। उसकी एक ही झूठ बात से उसकी उत्तम शिक्षा, गूढ़ तर्क, ललित भाषा, उत्कट अलंकार सब ही रंग धुँधला पड़ जाता है।

ओजमयी वक्तृत्व-शक्ति ईश्वर प्रदत्त होती है, परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हम अपने वार्तालाप के ढंग को सुगठित नहीं कर सकते। कुछ आदमी स्वभाव से ही अच्छे वक्तृत्वशाली होते हैं, परन्तु दूसरे अभ्यास करके इस विद्या को प्राप्त कर सकते हैं। वक्तृता देने की विद्या किसी भी विद्या से कम उपयोगी अथवा कम आवश्यक नहीं है। हमें शोक है कि अनेक युवकों को इसकी उचित शिक्षा नहीं दी जाती। वे चार आदमियों में भी गूंगे बनकर बैठे रहते हैं।

जिस बात को मुख से निकालो, पहिले उसको खूब तौल लो। कहीं ऐसा न हो कि किसी कही हुई बात के लिये पीछे तुम्हें पछताना पड़े। व्यर्थ कोई बात मत कहो, न जाने तुम्हारे मुंह से क्या निकल जाय। वार्तालाप करते समय अपना ध्यान उसी ओर रक्खो। बहुत-से आदमी कहीं बातें करते हैं और कहीं देखते हैं, जिसका प्रभाव दूसरे आदमी पर बहुत बुरा पड़ता है। एक बात की लम्बी चौड़ी भूमिका मत बाँधो। घुमा-फिरा कर एक बात को कहने से उसका प्रभाव इतना नहीं पड़ता, जितना सीधी तरह से कह देने में पड़ता है। कभी बोल-चाल में क्लिष्ट भाषा का व्यवहार न करो। सदैव ऐसी भाषा में बोलो, जिसे शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही समझ सकें। अपनी बात के प्रत्येक शब्द का स्पष्ट उच्चारण करो।

सातवाँ मोर्चा

~:※:~

गार्हस्थ्य जीवन

"प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थञ्च मानवाः ।
तस्मात्साधारणो धर्म्मः श्रुतिः पत्न्या सहोदितः ॥"

× × ×

"हर के बा अहले ख़ुद वफ़ा न कुनद ।
न शवद दोस्त रूये दानिशमंद ॥"

—शेखसादी

× × ×

"सभ्यता का सर्वोत्तम साक्षी वह घर है, जिसमें हम रहते हैं ।"

× × ×

"माता-पिता का सम्मान करो"—बाइबिल

× × ×

"जिस प्रकार सब बड़ी और छोटी नदियाँ समुद्र में जाकर विश्राम पाती हैं, इसी प्रकार सब आश्रमों के आदमी गृहस्थों में रक्षा पाते हैं । जिस प्रकार सब बच्चे अपनी माता की रक्षा करने से ही रक्षित होते हैं, इसी प्रकार सब भिक्षुक भी गृहस्थों की रक्षा-दान से ही जीते रहते हैं ।"

—वशिष्ट अ० ८, सूत्र १५ तथा १६

× × ×

"चूं इन्सांरा नबाशद फ़ज़लो ऐह्सां।
चे फ़र्क़ ज़ आदमी ता नक़्श दीवार ॥१॥
शेखसादी

× × ×

"To Support father and mother,
To Cherish wife and Child,
To follow a peaceful Calling,
This is the greatest blessing."
—Gautama

घर' शब्द में ही कुछ ऐसा जादू भरा है, जिसके स्मरण मात्र से हमारे हृदय में आनन्द का प्रवाह बहने लगता है। हमें वहाँ के मनुष्यों से ही केवल प्रेम नहीं होता, बल्कि वहाँ क जड पदार्थों से भी स्नेह हो जाता है। एक लेखक लिखता है—"घर! अहा!! यह कैसा मधुर शब्द है। उस शब्द के स्मरण मात्र से बच्चों की हंसी, प्रेम की वार्त्तालाप और परिचित पैरों की ध्वनि का चित्र खिंच जाता है"

भारतवर्ष में ऐसे बहुत ही कम घर हैं, जहाँ सदैव सुख और शांति का अटल साम्राज्य न पाया जाता हो। जब मनुष्य तमाम दिन के काम से थक जाता है तो स्वभावत: उसे विश्राम और शांति की आवश्यकता पड़ती है। यह विश्राम उसे अपने घर में ही मिल सकता है। परन्तु यदि उस घर में प्रवेश करते ही कलह, द्वेष, दुर्वचन आदि का सामना करना पड़े, तो निस्सन्देह उसे गृह-सुख प्राप्त नहीं है। उसे अपना जीवन बहुत कडुवा प्रतीत होता है। गृह कलह ने अनेक मनुष्यों के जीवन को विष-तुल्य बना दिया है।

हमारा घर हमारे लिये केवल एक क्रीड़ा-स्थल ही नहीं है। उसके सुख और शांति के साथ-साथ हमारे कंधों पर अनेक उत्तरदायित्वों का

भारी बोझ भी है। हम इन उत्तरदायित्वों को बिना समझे गृह-सुख और शांति का अनुभव नहीं कर सकते। घर में रहकर हमें कर्त्तव्यों की एक शृंखला में चलना पड़ता है कुछ लोग कहते हैं, घर मे पड़कर इस शृंखला मे बंधना ठीक नहीं, परन्तु क्या वे ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन कर स्वतंत्र हो सकते हैं? वे यह नहीं समझते कि इस शृंखला मे चलने से ही सुख है, इसके बाहर नहीं। इसके बाहर सुख मिल भी सकता है, तो केवल उन्हीं को, जो इसके भीतर चल चुके हैं। गृहस्थाश्रम के पश्चात् ही सन्यास सफल होता है।

घर में प्रत्येक स्त्री, बालक, बूढ़े-जवान सबका कुछ-न कुछ कर्त्तव्य है। यदि उनमें से प्रत्येक अपने कर्त्तव्य का ध्यान रखता है, तो उन्हें अपने घर में सुख-शांति की प्राप्ति के लिये कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती। उसको वे स्वाभाविक रीति से ही अपनी ओर आते दिखाई देते हैं।

स्त्री-समाज पर ही गृह-सुख अधिक अवलंबित है। इसलिये हमारा स्त्रियों के प्रति एक विशेष कर्त्तव्य होता है और स्त्रियों का भी हमारे प्रति एक विशेष कर्त्तव्य। माता, बहिन और पत्नी तीनों ही स्त्री-समाज के बड़े पवित्र और सुंदर रूप हैं हमारे लिये तीनों में अगाध प्रेम, पवित्र भावना और निःस्वार्थ सेवा भरी हुई है। वे हमारे लिये शोक में ढाढ़स, दुःख में समवेदना, कठिनाई में साहस और असफलता में उत्साह रूप हैं। माता, हां भगिनी तथा पत्नी के चुम्बन हममें क्रमशः वात्सल्य, पवित्रता और प्रेम के भाव भरते हैं।

यदि माता, बहिनों तथा पत्नियों में हमारे दुःख हरने की यह पवित्र शक्ति न होता, तो अनेक अंधे, लंगड़े, लूले, असमर्थों के लिये संसार में रहना दोडूभर हो जाता। एक बूढ़ा और अंधा मनुष्य गली-गली में सुई और पैचक बेचता हुआ डोला करता था। एक सज्जन को उसपर बड़ी दया आती थी। उन्होंने जब एक दिन उससे पूछा कि वह अपना जीवन कैसे व्यतीत करता है, तब उन्हें यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ

कि उसका जीवन अनेक मनुष्यों से अधिक सुखी है। उसने कहा—"मैं बड़े आनन्द में हूँ। मेरी स्त्री बड़ी पतिव्रता है, मुझे सुई पेचक बेचकर जो कुछ भी मिल जाता है, वह उसी में भलीभांति काम चला लेती है।"

स्त्रियों को कहीं देवी और कहीं राक्षसी कहा गया है। पातिव्रत, दया, क्षमा, गृह सुप्रबन्ध, स्नेह, बड़ों की भक्ति आदि गुण जिस स्त्री में हैं, वह साक्षात् देवी स्वरूप हैं, परन्तु इन्हीं गुणों की कमी से वह राक्षसी हो जाती है।

एक विद्वान कहता है—"मैं आपको बताऊंगा, स्त्री क्या है? वह सीधी स्वर्ग से आती है, उसमें प्रेम इतना अधिक होता है कि उसका अन्त-अनन्त परमात्मा के अतिरिक्त किसी को ज्ञात नहीं हो सकता। वे घर, समाज और संसार को स्वच्छ, सुगम और उच्च बनाती हैं। मनुष्यों के लिये स्त्रियाँ इतनी महत्वपूर्ण हैं कि वे उन्हें दुःख, निराशा और विपदा से उठाकर ठीक मार्ग पर ले आती हैं।" उधर महात्मा कबीर कहते हैं—

नागिन के तो दोय फन, नारी के फन बीस।
जाको डस्यो न फिर जिए, मरि है बिस्वा बीस॥
कामिनि काली नागिनी, तीन लोक मंझार।
नाम सनेही ऊबरा, विषया खाए झार॥

बातें दोनों ही सत्य हैं। जो स्त्री अपने घर को स्वच्छ, सुंदर और मधुर नहीं बना सकती, जो पति के आने पर प्रेम से उनका स्वागत नहीं करती, जिसकी प्रत्येक बात बनावटी होती है, उसका पति कभी शांति प्राप्त नहीं कर सकता। पति के घर में प्रवेश करते ही वे रोना-धोना और अपनी सास, ननद अथवा जिठानी आदि की शिकायतें करना प्रारम्भ कर देती हैं। वे नई नई फर्माइशें करके पति को तंग करती रहती हैं। वे यह भी नहीं देखतीं, कि अमुक वस्तुओं के लाने की उसमें इस समय सामर्थ्य है भी या नहीं।

गार्हस्थ्य सुख के लिये पति पत्नी की चित्त-वृत्तियों का मिलना बहुत ही आवश्यक है। उनमें यदि एक सी भावनाएं, विचार और आकांक्षाएं हैं, तो उनमें कभी कलह न होगा।

यदि पति सुशिक्षित, उच्च विचारों वाला और सात्विक है, परन्तु पत्नी कुपढ़, फिसक उठनेवाली और कलह-प्रिय है, तो उनका संबंध कभी सुखदायी नहीं हो सकता। हमारे देश में यह प्रथा कितनी भयंकर है कि नवयुवकों और नवयुवतियों का सम्बन्ध बिना उनके पूछे पाछे ही कर दिया जाता है। जिनके जीवन की सफलता या असफलता बहुत-कुछ इसी संबंध पर निर्भर है, जिन्हें अपना सारा जीवन एक-दूसरे के साथ बिताना है, जिन्हें एक शरीर के दो भाग होकर रहना है, उसमें उनको सम्मति के पूछे जाने की भी आवश्यकता नहीं ?

एंड्रू कार्नेगी का मत है—"विवाह-संबंध एक बड़ा गंभीर व्यवसाय है और इसके लिए अनेक महत्वपूर्ण विचार उत्पन्न होते हैं"। सुन्दरता ही स्त्रियों का आवश्यक गुण नहीं है। जो मनुष्य चमक दमक में अंधे होकर दूसरी बातों पर विचार करना भूल जाते हैं, उन्हें आगे चलकर पश्चात्ताप करना पड़ता है। स्नेह-शून्य सुंदरता अनेक पापों और अशांतियों की जड़ है। संसार की सुंदरियों में श्रेष्ठ परन्तु हृदय-हीन, पातिव्रतधर्म से विमुख और बकवादिनी स्त्री से तो सीधी-सादी, मधुर भाषण करनेवाली, सदाचारिणी कुरूपा पत्नी प्राप्त करना ही बुद्धिमत्ता है। अनेक मनुष्य अपनी स्त्री की अवहेलना केवल इसलिए करते हैं कि वह सुंदरी नहीं। उसके प्रेम, पातिव्रत, सहनशीलता आदि गुणों का उनके सम्मुख कुछ भी मूल्य नहीं है।

भारतीय गृहों दुर्दशा का मूल कारण स्त्री-समाज की हीन दशा है। मनुष्यों ने स्त्रियों को इतना दबा रक्खा है कि पुरुषों का भी जीवन दुखमय हो रहा है, फिर स्त्रियों की तो बात ही क्या ? सुशिक्षिता, सुशीला स्त्रियाँ सैकड़ों में एक-दो ही मिलेंगी। अधिकांश स्त्रियाँ ऐसी

ही मिलेंगी, जिनके आगे काले अक्षर भैंस बराबर है। वे न तो अपने धर्म को ही जानती हैं, न स्त्री-समाज के गौरव को ही। वे तो समझती हैं कि हमारा जीवन घर में बंद रहने, रोटी पकाने, झाड़ू देने और पानी भरने के लिए ही है। जो धनी हैं और जिन्होंने एक-दो हिंदी की प्रारंभिक पुस्तकें पढ़ ली हैं, वे गर्व में फूल जाती हैं। उनका काम अड़ोसिन-पड़ोसिन में गप-शप लड़ाना, एक-दूसरे से लड़ना-झगड़ना या तोता-मैना को किस्सा आदि नाशकारी पुस्तकें पढ़ना ही है। स्त्रियों का दिनभर रसोई करने, झाड़ू देने तथा पानी भरने में जुता रहना जिससे उनके अन्य गुणों के विकास होने का अवसर न मिले, बुरा है। परंतु आलसी हो जाना, परिश्रम का कोई काम न करना, नौकरों पर सब काम छोड़कर पलंग पर बैठ जाना, उससे भी बुरा है।

स्त्रियों को यदि उचित शिक्षा दी जाय, तो वे पति उसके कार्य में बहुत-कुछ सहायता दे सकती हैं। बोल्शेविज्म के प्रधान नेता लेनिन का कार्यक्षेत्र जब मनुष्यों में था, तब उनकी पत्नी स्त्रियों को तैयार करने में लगी हुई थी। इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता कि, उनकी सफलता में एक बड़ा हाथ स्त्रियों का रहा है। इसी तरह गत तथा वर्तमान योरोपीय महायुद्ध में जब पुरुष रणक्षेत्र में लड़ रहे थे, तब उनकी स्त्रियाँ कारखानोंमें उनके लिए यंत्र और अस्त्र-शस्त्र तैयार कर रहीं थीं। अर्वाचीन भारतवासी तो अपने किसी कार्य में स्त्रियों की सम्मति तक लेना अनावश्यक समझते हैं। उनके मस्तिष्क में कभी यह विचार ही नहीं आता, कि स्त्रियाँ भी कभी उनके किसी कार्य में सहायता या उचित सम्मति दे सकती हैं।

दूसरी बात हमारे देश में स्त्रियों को स्वतंत्रता देने की है। राजनीतिक स्वतंत्रता, न्यायालय में वकालत करने की स्वतंत्रता, चुंगी और कौंसिल के चुनाव में मत देने की स्वतंत्रता, शासन में पद मिलने की स्वतंत्रता की बात अभी दूर है। अभी तो प्रश्न यह है कि उन्हें पर्दे से

बाहर निकलने की भी स्वतंत्रता दी जाय या नहीं? पर्दे के रिवाज की बुराइयाँ अब सभी को मालूम हो गई हैं, परन्तु अभी बहुत ही कम उसे व्यावहारिक रूप से उठाने को तैयार हैं। हम यह नहीं कहते कि प्रतिदिन आप अपनी पत्नी के हाथ में हाथ डालकर पार्क में घूमने जाइए या सिनेमा और थियेटर देखिए। यह स्वयं अपने अनेक दोषों से रहित नहीं हैं, परन्तु आप उन्हें बाहर आने-जाने, घर के बड़ों से मिलने और शिक्षा प्राप्त करने की स्वतंत्रता दीजिए।

पति का स्त्री के प्रति कर्त्तव्य

पति और पत्नी का सम्बन्ध बड़ा ही पवित्र है। पति का प्रथम कर्त्तव्य है कि वह अपनी स्त्री से प्रेम करे, उसका कभी अनादर न करे और सदैव सहन-शीलता का व्यवहार करे। उसका दूसरा कर्त्तव्य यह है कि उसकी प्रत्येक अच्छी बात में सहानुभूति प्रकट करे और यदि उससे कोई ग़लती हो जाय, तो नर्मी से समझा दे। उसका तीसरा कर्त्तव्य यह है कि उससे जहाँ तक हो सके वह उसके भोजन, वस्त्र और अन्य स्त्री की आवश्यकताओं को पूरी करने की चेष्टा करे। अन्तिम और आवश्यक कर्त्तव्य यह है कि वह तमाम अपने धार्मिक कामों में उसका बराबर का भाग दे।

स्त्री का पति के प्रति कर्त्तव्य

स्त्री का कर्त्तव्य है कि वह अपने पति की आज्ञाकारिणी रहे। अपने पति को, चाहे वह लँगड़ा लूला ही क्यों न हो, सारे संसार से अधिक प्रेम करे। वह गृह का सुप्रबन्ध करे और जितनी आय हो, उसी के अनुसार घर का ख़र्च चलावे। महात्मा बुद्ध स्त्रियों के निम्न कर्त्तव्य बताते हैं—

(१) गृह की सुव्यवस्था करे (२) मित्रों और आगंतों की मेहमानदारी करे (३) पातिव्रतधर्म का पालन करे (४) घर के व्यय

में मितव्ययता से काम ले (५) सब कामों में सुघड़ता और बुद्धिमत्ता प्रकट करे।

महाराज मनु का उपदेश है—"जिस घर में पति पत्नी से प्रसन्न रहता है, तथा पत्नी पति से प्रसन्न रहती है, उस घर में सुख चिरस्थायी रहता है।" बाइबिल में कहा है—"जो अपनी स्त्री से प्रेम करता है, वह अपने से ही प्रेम करता है।" इसलिये पुरुषों का कर्त्तव्य है कि जहाँ तक हो सके अपनी स्त्रियों के प्रति उदारतापूर्ण व्यवहार करें। पति यदि चाहते हैं कि उनकी स्त्री सीता के समान आदर्श बने, तो उन्हें भी राम के समान आदर्श बनना चाहिए।

लड़कियों को प्रारम्भ से ही कमरों की सफ़ाई, चीज़ों की सुव्यवस्था, रसोई बनाना, शिशु पालन, छोटे मोटे हिसाब रखना आदि बातों की शिक्षा दी जानी चाहिए। निस्संदेह यदि ऐसा किया जाय तो आगे चलकर यही उत्तम गृहिणी बन सकेंगी।

प्रायः भारतीय स्त्रियों को यह आदत है, कि जहाँ वे दो चार भी इकट्ठी हुईं, व्यर्थ की इधर उधर की बातें चलने लगती हैं। इन बातों ही बातों में लड़ना-झगड़ना तक प्रारम्भ हो जाता है और धीरे-धीरे यह युद्ध की अग्नि इतनी प्रज्वलित हो जाती है कि वह वर्षों के लिये अनेक घरों की शांति जलाकर ही रहती है। इन लड़ाई-झगड़ों का कोई वास्तविक कारण नहीं होता। यह तो बैठे ठाले की राड़ होती है। जिस घर में सास, ननँद, जिठानी आदि कई स्त्रियाँ हुईं, फिर तो तू तू मैं मैं रोज़ ही हुआ करती है। इसका प्रभाव भाई-भाई और बाप बेटों पर भी पड़ता है और उनमें मन-मुटाव तक हो जाता है। बुद्धिमान पुरुषों का यही कर्त्तव्य है कि वे अंधे न होकर अपनी-अपनी स्त्रियों को समझा दें यदि वे सम्मिलित परिवार में शांति से रहने में असमर्थ हैं, तो अच्छा यही है कि वे अलग-अलग हो जायँ।

माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य

हमारा माता पिता के प्रति एक विशेष कर्त्तव्य होता है। जब हम संसार में आए थे, तब हम न तो खड़े हो सकते थे, न चल-फिर ही सकते थे। उस समय हमारे माता-पिताओं ने बड़े परिश्रम से हमें पाला और शिक्षित कर संसार में अपने पैरों पर खड़े होने के योग्य बनाया। उनके ऋण से कैसे कोई उऋण नहीं हो सकता है? माता-पिता ईश्वर के प्रतिबिम्ब हैं। यदि तुमसे तुम्हारे माता-पिता प्रसन्न नहीं हैं, तो तुम ईश्वर को कैसे प्रसन्न कर सकते हो? हज़रत मोहम्मद से किसी ने पूछा—"ईश्वर किस काम को सबसे अधिक पसन्द करता है?" उन्होंने उत्तर दिया—"निश्चित समयों पर ईश्वर से प्रार्थना करना और अपने माता पिताओं की इज्ज़त करना, उनकी आज्ञा मानना और उन्हें प्रसन्न रखना।" कंफूशियस का मत है, "माता-पिता की सेवा करते हुए, उनसे मानपूर्वक बोलो, उनकी इच्छाओं को जानकर उनकी अवहेलना मत करो, उनकी भक्ति करो और किसी प्रकार भी उनका विरोध मत करो। यदि वे तुम्हारे ऊपर कठोर व्यवहार भी करें, तो भी तुम कुछ मत कहो"

संतान के प्रति कर्त्तव्य

इस बात का पूरा ध्यान रक्खो कि तुम अपने बच्चों को उनके भविष्य जीवन की नींव बनाने के पूरे साधन दे रहे हो। यदि तुम अपनी संतान के लिये कोई बड़ी पूंजी न छोड़ जाओ, परन्तु उन्हें सुशिक्षित, सदाचारी और स्वस्थ बना सको, तो तुम अपना कर्त्तव्य पूरा कर देते हो। महात्मा सुकरात ने एक बार कहा था—"जो अपने पुत्र को उचित शिक्षा देकर योग्य बना देता है, वह उसके मान और कर्त्तव्य प्राप्त करने का अधिक अधिकारी है, बनिस्बत उसके, जो कि उसे केवल एक विशाल संपत्ति का अधिकारी बना देता है।"

ऐसे बहुत ही कम पिता मिलेंगे, जो अपने बच्चों को उचित रीति

से देखभाल करते हैं तथा उनमें साहस, आत्म विश्वास और उच्च विचार भरने की चेष्टा करते हैं। अनेक पिता तो ऐसे हैं, जो अपने पुत्रों का सदा ग्लानि दिलाया करते हैं। वे उनके तनिक से दोषों को हजार गुना अधिक करके दिखाते हैं। वे उनसे कहा करते हैं, 'तुम संसार में कुछ नहीं कर सकोगे', तुम्हें कोई कौड़ी को भी न पूछेगा' आदि। वे समझते हैं कि वे उनके ऐसा कहने से अपने दोषों को दूर कर देंगे। परन्तु होता है प्रायः उससे उलटा। जहाँ वे उत्साही, परिश्रमी और साहसी होते, वहाँ वे दब्बू, मरे हुए और आकांक्षाहीन हो जाते हैं। अनेक मनुष्य अपने बालकों के पीछे सदैव एक या दो नौकर लगाए रहते हैं, जिससे वे कुमार्ग में न पड़ने पावें। ये नौकर प्रायः अशिक्षित, तुच्छ विचारवाले और आचारहीन होते हैं। इससे बालकों की प्रकृति भी ठीक उन्हीं की-सी हो जाती है। जो बच्चे सदैव निगरानी में रहते हैं, उनका आत्म-विश्वास नष्ट हो जाता है। वे भीरु और निर्बल हो जाते हैं। यदि तुम अपने बच्चों को दृढ़ और सदाचारी बनाना चाहते हो, तो उन्हें स्वतंत्रता दो। परन्तु इस स्वतंत्रता की भी सीमा होनी चाहिए। जब तुम उन्हें बुरे मार्ग पर जाते देखो, तो उनके सद्विचारों को उठाकर उचित मार्ग सुझा दो। उनके लिये तुम हौआ न बनकर मित्र बन जाओ। तुम इस बात की चेष्टा करो कि, वे अपने विचारों को तुम्हारे सामने उसी स्वतंत्रता से रक्खें जैसे कि वे अपने मित्रों के सम्मुख रखते हैं। शेक्सपियर का कथन है—"वह पिता बुद्धिमान है, जो अपने बच्चे के मस्तिष्क को जानता है।"

बाइबिल में एक कहावत है, "अपने पुत्र को सुधार, वह तुझे शांति देगा; वह तेरी आत्मा में आनन्द प्रवाहित करेगा।" बच्चे अपने माता-पिता की आदतों का अनुसरण बहुत जल्दी करते हैं। इसलिये उन्हें अपनी आदतों के विषय में बड़ा सावधान रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त उन्हें यह बतलाते रहना चाहिए कि ईश्वर अन्तर्यामी है, वह

सदैव उनके प्रत्येक कार्य को देखता है, वह उनके प्रत्येक शब्द को सुनता है और वह उनके मस्तिष्क के प्रत्येक विचार को जानता है।

बालकों पर स्नेहमय उपदेश का बड़ा ही प्रभाव पड़ता है। भगिनी निवेदिता जब प्रथम बार इङ्गलैंड से भारत की सेवा करने के विचार से आ रही थीं, तब उसी स्टीमर में एक अंगरेज़ लड़का भी था। यह लड़का बड़ा दुश्चरित्र था और इसके माँ-बाप ने तंग आकर इसे निकाल दिया था। यह इतनी शराब पीता था, कि भोजन के समय उसके पास कोई नहीं बैठ सकता था; स्टीमर पर बैठे हुए सब लोग इसे धिक्कारते थे, परन्तु भगिनी निवेदिता का हृदय उसके भविष्य के विचार से विचलित हो गया। एक दिन अवसर पाकर उन्होंने उस लड़के को एकांत में बुलाया और प्यार से उसे बहुत कुछ समझाया। उन्होंने उसे अपनी एक क़ीमती घड़ी, जो उनकी माँ ने उन्हें वर्षगाँठ के दिन दी थी, देकर कहा—"याद रखना यह घड़ी बेचने या गिरवी रखने के लिये नहीं है, किन्तु जो लड़का देश से निकाल दिया गया है और जिस दिन वह कुमार्ग से सुमार्ग पर आया है, उस दिन की याद रखने के लिये यह घड़ी तू सदैव अपने पास रखना।" इस उपदेश के एक वर्ष पश्चात् भगिनी निवेदिता के पास उस लड़के की माँ का एक बड़ा ही हृदय-वेधक पत्र आया, जिसमें लिखा था—"तुम्हारी दयासंगत के पश्चात् मेरे लड़के की प्रकृति में बड़ा हेर फेर हो गया था। उसने अपनी सब बुरी आदतें छोड़ दी थीं। वह अब बहुत सुधर गया था और दक्षिण अफ्रीका में जाकर उसने बड़ा नाम कमाया था; परन्तु अब बीमारी से मरने लायक हो गया है। मरते-मरते वह तुम्हारा बड़ा उपकार मानता है और बड़े प्रेम से तुम्हारी याद करता है।"

यह बात कभी अपने पुत्रों अथवा घर के किसी मनुष्य पर प्रगट मत होने दो, कि तुम उनपर अविश्वास करते हो। औरंगज़ेब अपने बड़े-बड़े अफ़सरों और यहाँ तक कि अपनी बेगमों और बच्चों पर भी

विश्वास नहीं करता था उसको अपने अंतिम दिनों में इसका कड़ुवा परिणाम चखना पड़ा। पिता यदि पुत्र को अविश्वास की दृष्टि से देखे, तो पुत्र कभी भी विश्वास-पात्र न बन सकेगा। इसी प्रकार जिस नौकर को तुम सदैव संदेह की दृष्टि से देखोगे, वह अंत में चोर हो निकलेगा।

मेज़, कुर्सी, दरी, ग़लीचे, काँच, तस्वीरें, झाड़-फ़ानूस से सजा हुआ विशाल भवन भी यदि स्वच्छता और नियम के साथ नहीं रक्खा जाता, तो उससे हमें सुख नहीं मिल सकता। यह बाहरी फ़ैशन और दिखावा हमारी आनंद की सीमा को एक इञ्च भी नहीं बढ़ा सकता इसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि जो मकान जितना सादा और स्वच्छ है, उतना ही अच्छा है। इस विषय में दो बातें ध्यान में रखना आवश्यक है। पहिली तो यह कि मकान ख़ूब हवादार बनवाए जायं, प्रकाश और हवा के लिये बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ और दरवाजे हों और उनकी छत ऊंची हो। दूसरी बात यह है कि मकान स्वच्छ और साफ़ रक्खा जाय। जो चीज़ जहाँ की हो, वहीं नियमपूर्वक रक्खी जाय। भारतीय ग्रामों के अधिकांश मकान कच्चे और मिट्टी के बने होते हैं। परंतु उनमें-से अनेक घर गोबर से लीप-पोतकर इतने स्वच्छ रक्खे जाते हैं कि उनको देखकर हृदय खिल जाता है।

गंदी और बुरी जगह में रहने से स्वास्थ्य और चरित्र दोनों पर प्रभाव पड़ता है। उनमें रहने से मनुष्य आलसी और कमज़ोर हो जाता है। उनमें आत्म-सम्मान नहीं रहता और उनका चित्त चंचल हो जाता है। वे कभी व्यवस्था से काम करना सीख ही नहीं सकते।

घर का स्वच्छ रहना या न रहना बहुत कुछ स्त्रियों पर ही निर्भर है। गृहिणी यदि गृह-कर्म नहीं जानती, तो चिररोगिणी गृहिणी की तरह उसकी सब बातों की शृङ्खला नष्ट हो जाती है। धन से कुछ उपकार नहीं होता, अनर्थक व्यय होता है। आधे के लगभग नौकर-चाकर और आने-जानेवाले लोग ही हड़प कर जाते हैं। बहुत धन ख़र्च

करने पर भी खाने-पीने की सामग्री कम हो जाती है। घर की सब चीज़ें इधर-उधर पड़ी रहती हैं और जब किसी चीज़ की ज़रूरत होती है, तो घंटों उसे इधर-उधर ढूंढना पड़ता है। इसलिये उन्हें गृह-कर्म की व्यावहारिक शिक्षा मिलना नितांत आवश्यक है। खेद है कि हमारे देश में अपने पिता के घर पर बहुत ही कम लड़कियों को विद्याध्ययन करने का अवसर दिया जाता है। यदि तुम्हारी पत्नी अशिक्षिता भी हो, तो भी तुम प्रयत्न करके उसे पढ़ा सकते हो। तुम्हारे लिये यह तनिक भी कठिन काम न होगा और आगे चलकर इससे तुम्हें अनेक कार्यों में सहायता मिल सकेगी। हमारे सुपरिचित दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रही वीर की पत्नी नगरानी देवी अनपढ़ थीं। यह बात आपको खटक रही थी, पर आप ऐसे अकर्मण्य नहीं थे कि भाग्य का ठोककर बैठ रहते। आपने अपने प्रयत्न से अपनी पत्नी को सुशिक्षिता बना लिया और यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि आगे चलकर हमारे मित्र को उनसे कितनी सहायता मिली।

हम प्रायः गृह-प्रबंध की छोटी-छोटी बातों में बड़ी-बड़ी भूलें किया करते हैं। हमारे घरों में बहुत-सी छोटी छोटी चीज़ें यों ही नष्ट हो जाती हैं, परन्तु यदि हम इनके वर्ष भर का हिसाब लगावें तो मालूम होगा कि हमारी एक बड़ी रकम प्रति वर्ष व्यर्थ ही खारी कुएं में चली जाती है। उदाहरण-स्वरूप अनाज को सुरक्षित ढकनदार बर्त्तनों में न रखकर यों ही पटक देने से कुछ छीज़ जाता है और कुछ चूहे खा जाते हैं। इसी तरह हमारी असावधानी से बन्दर, कुत्ते, बिल्ली आदि बहुत-सा नुकसान प्रतिमास कर देते हैं। दूसरी बात यह है कि हम छोटी-छोटी चीज़ें बाज़ार से बिना आवश्यकता के ही ख़रीद लाते हैं। इनमें-से अनेक चीज़ें कभी व्यवहार में नहीं आतीं। इसलिये हमें छोटे-छोटे ख़र्चों में बहुत सावधान रहना चाहिए।

अब हम एक बात ऐसी बताते हैं जो गार्हस्थ्य जीवन को सुखी

बनाने के लिये बहुत ही आवश्यक है। वह यह है कि हम घर के सब मनुष्यों से स्नेहपूरित और रोषहीन व्यवहार करें। कुछ मनुष्य ऐसे हैं, जो बाहर तो प्रसन्न रहते हैं, मित्र वर्गों से वार्तालाप करते करते नहीं अघाते; परन्तु जहाँ घर में घुसते हैं, उनका माथा ठनकने लगता है, उनका मुंह सूज जाता है और स्नेह सब भाग जाता है। ऐसे लोग कहा करते हैं कि उन्हें घरों का स्नेह प्राप्त नहीं है, जब तक वे घर में रहते हैं, उन्हें अधिकांश समय गुमसुम ही बिताना पड़ता है आदि। परंतु क्या तुमने यह सोचा है कि प्रेम प्रेम से ही प्राप्त होता है। यदि तुम तनिक तनिक-सी बातों पर उन्हें झिड़क देते हो, उनके लिये कभी एक मधुर बात तुम्हारे मुंह से नहीं निकलती, तुम उनसे सदैव घृणा ही करते हो, तो भला तुम्हें उनका प्रेम कैसे प्राप्त हो सकता है। तुम्हारा घर तो एक बैंक के समान है, तुम उसमें जो कुछ भी रक्खोगे, सूद-सहित वही तुम्हें मिलेगा। घर एक गुम्बज है। जैसा तुम कहोगे वही तुम्हारे पास वापिस आवेगा। इसलिये घर के लोगों का स्नेह प्राप्त करने के लिये उनसे स्नेह करो।

जो मनुष्य गार्हस्थ्य सुख के आनन्द को उठाना चाहते हैं, उन्हें घर में रहने से अपने व्यवसाय की सारी कथाएं भूल जाना चाहिए। स्वभावतः बच्चे और स्त्रियाँ तुमसे दो चार मधुर शब्द सुनने की इच्छा रखती है, परन्तु तुम्हारे गंभीर चेहरे से उनको निराशा होती है। उनका विकसित होनेवाला आनंद वहीं बैठ जाता है।

———*———
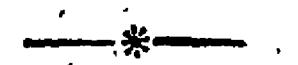
आठवाँ मोर्चा

व्यवसाय तथा उसके लिये आवश्यक गुण

"आरमेतैव कर्माणि श्रान्तः श्रान्तः पुनः पुनः।
कर्माण्यारभमाण हि पुरुषं श्रीनिषेवते ॥

× × ×

संग्रह करो करोड़, लुटाओ धन अनगिनती।
ऊँचे आसन बैठ सुनो दासन की बिनती ॥
निजी प्रभुता के हेतु, करो तुम सब कुछ नीका।
किंतु शील के बिना, सभी हैं जग में फीका।

—कामताप्रसाद गुरु

× × ×

"व्यवसाय के लिये तीन बातों की आवश्यकता है—ज्ञान, स्वभाव और समय।"

—लॉर्ड चेस्टर फील्ड

× × ×

"धनोपार्जन की उधेड़-बुन में अपने सदाचार, सत्यता और सुशीलता को खो बैठो। अपनी आत्मा को बेचकर धन जुटाना मोती फेंककर सीप बटोरना है"—लेखक

"एक उपयोगी व्यापार स्वयं की खान है"—बर्क

× × ×

"बोरिया बाफ़ गर्चे बफ़ंदा अस्त ।
न बरदश बकार गाहे हरीर ॥—शेख़सादी

× × ×

"Stand by your Compass and your chart,
With firmnsss and with steady aims.
Your will to do and fearless heart,
Shall win for you and honored name.

मनुष्य, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में दिन-रात रत रहता है। प्रत्येक काय और उत्पत्ति का मूल कारण आवश्यकता ही है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के साधनों में संपत्ति प्रधान साधन हैं। इसलिये प्रत्येक मनुष्य का कुछ-न-कुछ धन की अवश्य आवश्यकता होती है। बड़े-बड़े विद्वानों, योगियों और महात्माओं का भी संपत्ति-मानों का आश्रय लेना पड़ता है। मनुष्य की व्यक्तिगत, सामाजिक या धार्मिक उन्नति धन की प्राप्ति तथा उसके उचित उपयोग पर बहुत कुछ निभर है। धन को उचित या अनुचित रीति से प्राप्त करने और व्यय करने का प्रभाव मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन पर पड़ता है। मार्शल कहता है—"संपत्ति की उत्पत्ति ही मनुष्य का उपजीवन, उसकी आवश्यकताओं की तृप्ति और उसकी शारीरिक, मानसिक और नैतिक उन्नति का एकमात्र साधन है। परन्तु जो संपत्ति अंत में मनुष्य के ही काम में आनेवाली है, उसके उत्पन्न करने का मुख्य साधन मनुष्य ही है।" अब हमे देखना यह है कि संपत्ति की उत्पत्ति के लिये मनुष्य में क्या-क्या गुण होने चाहिए।

किसी भी व्यवसाय अथवा पेशेवाले के लिये परिश्रमी, पुरुषार्थी, स्वस्थ और कार्यशील होने की आवश्यकता है। प्रत्येक कार्य का महत्व उतना ही विकसित होता है, जितना कि उक्त गुणों का उनपर प्रयोग

किया जाता है। मनुष्य ही एक व्यवसाय के महत्त्व का निर्णय कर सकता है, न कि एक व्यवसाय मनुष्य का।

एक व्यवसायी मनुष्य को नौकरी पेशेवाले से कहीं अधिक धन उपार्जन करने का अवसर प्राप्त होता है। वह अपने गुणों का भली भाँति उपयोग कर सकता है और उनके अनुसार ही फल प्राप्त कर सकता है, परन्तु साथ ही उसमें चरित्र संगठन की भी अधिक आवश्यकता है। जो मनुष्य अपने स्वभाव, ध्यान तथा उनकी आकृति पर शासन नहीं कर सकता, उसे व्यवसायी मनुष्य बनने का विचार कतई छोड़ देना चाहिए। चंचल चित्तवाला मनुष्य व्यवसाय की आंतरिक बातों को जान ही नहीं सकता, इसलिये वह उसे कर भी नहीं सकता। जो मनुष्य अपने मुख की आकृति इच्छानुसार स्थिर नहीं रख सकता, वह उसके द्वारा अपने गुप्त भावों को प्रकट कर देता है, जो अपने स्वभाव पर शासन नहीं कर सकता. वह बुद्धिमान और सहृदय मनुष्यों को भी दुश्मन बना लेता है।

हम जिस व्यवसाय को करते हैं, वह चाहे कितना ही छोटा हो, परन्तु हमें उसे तुच्छ नहीं समझना चाहिए। मोची का काम करना अपमानजनक नहीं है, परन्तु अपमानजनक तो बुरे जूते बनाना है छोटे-से-छोटा व्यवसाय भी बड़ी-से-बड़ी नौकरी से अधिक अच्छा है; क्योंकि इससे एक मनुष्य में स्वतंत्रता, आत्म-विश्वास और साहस आता है।

एक व्यवसाय को हाथ में लेते समय उसका ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त कर लेना अत्यन्त आवश्यक है। बेजाने-समझे हाथ फंसा देने से अन्त में गाँठ की पूंजी भी निकल जाती है। एक विद्वान का मत है 'कोई भी कार्य प्रारम्भ करने में जल्दबाज़ी मत करो और बिना समझे उसे प्रारम्भ ही मत करो। कोई माली एक पेड़ को चाहे, जितना सींचे परंतु वह उपयुक्त मौसिम से पहिले फल नहीं दे सकता है।

अपने व्यवसाय की मुख्य-मुख्य बातें अपनी देख-भाल में ही रक्खा

सब काम का नौकरों के विश्वास पर छोड़ देने तथा स्वयं ऐशो आराम में लग जाने से एक-न-एक दिन व्यवसाय चौपट हो जायगा। एक कहावत है 'यदि तुम किसी काम को करना चाहते हो, तो स्वयं जाओ और उसे करो और यदि उसे नहीं करना चाहते, तो उसे किसी और पर छोड़ दो।'

भारतवासियों में मिलकर काम करने का गुण बहुत ही कम पाया जाता है। दूसरे देशों में प्रायः सभी बड़े-बड़े व्यवसाय और कंपनियाँ अनेक लोगों के सहयोग से चल रही हैं। यह न समझना चाहिए कि यदि दूसरे लोग भी साझी हो जायँगे, तो हमें नफ़े में से हिस्सा बाँटना पड़ेगा। एक काम में जितनी ही अधिक पूंजी लगाई जायगी, उसमें उतना ही अधिक लाभ होगा। छोटी पूंजी का व्यवसाय कभी स्थाई और विशेष लाभजनक नहीं होता। सदैव काम फेल होने का खटका बना ही रहता है। छोटे से-छोटे काम में भी यदि अधिक पूंजी लगाई जायगी, तो उसमें उतना ही अधिक लाभ होगा। अमेरिका में केवल एक पिन बनानेवाली कंपनी ही करोड़ों की पूंजी पर स्थापित है और संसार के एक बड़े भाग की आवश्यकता की पूर्ति करती है।

अपने लाभ के लिये दूसरे देशों का कच्चा माल भेजकर अपने देश का गला घोटना अनुचित है। प्रत्यक्ष में तो तुम कुछ फ़ायदा कर लेते हो, परन्तु यह फ़ायदा फ़ायदा नहीं है; तुम्हारी सुख-संपत्ति अधिकांश देश की सुख-संपत्ति पर ही निर्भर है। देश की सुख-संपत्ति तब ही बढ़ सकती है, जब तुम देश में नए-नए उद्योग-धंधों का प्रचार करो।

अनेक व्यवसायों की ओर दौड़ने से एक ही व्यवसाय में लगे रहना अधिक सफलता जनक हो सकता है। एक बार चाहे एक काम में तुम्हें हानि भी उठानी पड़े, तो भी तुम उसको छोड़कर मत भागो। उसमें लगे रहने से, तुम्हें अनुभव होगा और तुम्हें उसकी प्रत्येक छोटी और

मोटी बातों का ज्ञान हो जायगा। तब निस्संदेह तुम इसमें सफलता प्राप्त करोगे।

× × × ×

कुछ समय के लिये चाहे हम भले ही बेईमानी सीनाज़ोरी और धोखाधड़ी में सफलता प्राप्त कर लें, परंतु चिरस्थायी सफलता तो सत्यता और ईमानदारी से किए हुए परिश्रम से ही मिल सकती है। तुम घृणित उपायों द्वारा ऐंठे हुए धन से चाहे भले ही एक बार मूर्खों की आंखें चौंधिया दो। परंतु वह रोशनी दो-चार दिन में ही विलीन हो जायगी। जो सदैव सत्यता का व्यवहार करते हैं, जो मौक़ा आने पर भी छल-कपट नहीं करते, उनकी धाक सबपर बंध जाती है और उनका व्यवसाय चमक उठता है। दूसरे व्यापारी अपने ग्राहक को एक बार चाहे धोखा देने में समर्थ हो जायं और कुछ अधिक अनुचित फ़ायदा उठा लें, परन्तु वह सदैव के लिये उस ग्राहक को हाथ से खो बैठते हैं।

कुछ मनुष्य कहते हैं कि दूकानदारी में तो छल-कपट, झूठ बेईमानी बिना काम चल ही नहीं सकता। सीधे सादे दूकानदार मनुष्य का तो वहाँ गुज़र ही नहीं है परन्तु हमारे विचार में तो ईमानदार मनुष्य ही वहाँ भी अधिक सफल होते हैं। लोग जब जान जाते हैं कि अमुक मनुष्य एक भाव कहता है, वह मिलावट की चीज़ नहीं बेचता, तो वे उसी के यहाँ जाते हैं।

भारतवर्ष को ऐसे दुकानदारों की जरूरत है, जो जापान या मैंचेस्टर के बने हुए माल को 'स्वदेशी वस्त्र' कहकर नहीं बेचते। उसे ऐसे वैद्यों और डाक्टरों की ज़रूरत है, जो यदि एक रोग को नहीं पहिचान पाते हैं, तो झूंठा बहाना करके अंधाधुंध दवाइयां नहीं देते। ऐसे वकीलों की ज़रूरत है, जो झूठे और पोचल मुकद्दमों को अपनी फ़ीस के लिये जिताने की आशा देकर नहीं लड़वाते। उसे ऐसे व्यापारियों की ज़रूरत है, जो छत्तीस इञ्च कपड़े के लिये छत्तीस इञ्च और सोलह छटाँक अनाज

के लिये सोलह छटांक ही देते हैं। संक्षेप में हम यों कह सकते हैं कि उसे ऐसे मनुष्यों की जरूरत है, जो बेईमानी से एक कौड़ी भी लेने का विचार नहीं करते।

यदि इस संसार में मनुष्य प्रकृति में बेईमानी, धोखेबाज़ी कतई न होती, तो यह संसार और भी कितना मनोरम हो जाता; परन्तु विचार करो, जैसे कि एक मनुष्य झूठ और धोखा दे जाता है, उसी प्रकार पर्वत, समुद्र, नदी सब कभी कभी धोखा दे देना जानती, पृथ्वी हमारे बीज के बदले में उपज देने में बेईमानी कर जाती, जिस ज़मीन को हम घास से हरी-भरी देखते हैं, वास्तव में अथाह जल-सागर प्रमाणित होती, अथवा पृथ्वी की आकर्षण शक्ति सूर्य की रोशनी पर चिरस्थायी विश्वास न किया जाता, तो इस संसार का क्या रूप होता?

अनेक नवयुवक 'किसी भी साधन से' शीघ्र ही धनी बनने की इच्छा रखते हैं। वे बिना कठिनाइयों और बाधाओं को सहन किए हुए एक-दो वर्ष में ही नगर के प्रसिद्ध रईसों में हो जाना चाहते हैं, वे इस कार्य में अंधे हो जाते हैं, उनकी सारी शक्तियाँ बेईमानी, धोखेबाज़ी और झूठ में केन्द्रित हो जाती हैं। हमारे जीवन में अनेक ऐसे अवसर आते हैं, जब ईमानदारी एक ओर होती है और अनुचित उपायों से प्राप्त होने वाला धन दूसरी ओर होता है। उस समय भी जो मनुष्य उस विशाल धन को लात मार कर ईमानदारी की ही रक्षा करते हैं, वे ही दूरदर्शी हैं।

व्यवसाय, राजनीति, धर्म और हमारे जीवन के प्रत्येक विभाग में हमें ईमानदार होना चाहिए। यदि हम ऐसा करते हैं, तो न केवल इससे दूसरे मनुष्यों को प्रसन्नता और सफलता प्राप्त होती है। हम संसार के प्रभाव से बच नहीं सकते। हमारे जीवन का प्रत्येक पल न केवल अपनी प्रसन्नता और धन पर निर्भर है, बल्कि हमारा स्वास्थ्य हमारी शक्ति, हमारा सुख संसार की स्थिति पर निर्भर है, जिसके कि

हम एक भाग हैं। इसलिये देश, समाज, पड़ोसियों और स्वयं अपने लिये हमें ईमानदारी से चलना चाहिए।

× × × ×

धन का प्राप्त कर लेना तो सहज है, परन्तु उसका सदुपयोग करना बहुत कठिन है। संसार में ऐसे अनेक आदमी मिलेंगे जो किसी तरह धनवान होने में सफल हो गए हैं, परन्तु ऐसे बहुत ही कम आदमी मिलेंगे, जो प्राप्तधन का उचित रीति से व्यय करते हैं।

आप यह जान लें कि एक आदमी अपने धन को किस तरह व्यय करता है, तो आप तुरन्त ही उसके आचार-विचारों को बता सकते हैं। प्रत्येक आदमी के लिये रुपए का उपयोग करना, पैदा करना, उसका बचाना और ख़र्च करना उसकी लौकिक बुद्धि चातुर्य की सर्वोत्तम परीक्षा है।

हेनरी लेटर ने अपने एक ग्रंथ में लिखा है—"रुपए के पाने, बचाने, ख़र्च करने, देने, लेने; उधार देने, कर्ज़ लेने और दान देने आदि के नियमित ढंग आदमी के पूरे होने के सच्चे प्रमाण हैं।"

अनेक आदमी साधारणतया तो बड़े फटे हाल रहते हैं। पेट भर खाने को भी नहीं खाते, फिर दान और पुण्य का तो कहना ही क्या है? एक पैसा गाँठ से निकालते मानों उनका दम-सा निकलता है, परन्तु वे ही विवाह-शादियों में हजारों रुपया फुलवाड़ी, आतिशबाज़ी वगैरह में लुटा देते हैं। उस समय उनका हृदय बड़ा उदार हो जाता है और वे इस कहावत को चरितार्थ करते हैं कि "बनिएँ की कमाई विवाह-शादी और मकान में ही स्वाहा होती है।" दूसरे वे हैं, जो रोज़ की कमाई शराब गाँजे आदि में फूँक देते हैं और दूसरे दिन के लिये एक पैसा भी नहीं बचाते एक बार मज़दूरों ने लार्ड जनरल से अपने ऊपर लगे हुए अनुचित टैक्स की शिकायत की। लार्ड ने उत्तर दिया—"विश्वास रक्खो

कि सरकार तुमपर इतना टैक्स नहीं लगाती, जितना तुम स्वयं अपने ऊपर केवल शराब के खर्च से लगा लेते हो।"

खर्च की कोई नियमित व्यवस्था न होने से अपव्यय भी होता है और उतना आराम भी नहीं मिलता है। प्रायः जिस मद्दे कम खर्च होना चाहिए था, उस मद्दे में ज़्यादा खर्च हो जाता है, परन्तु आवश्यक बातों में कमी करनी पड़ती है। व्यय की नियमित व्यवस्था होने के लिये आय-व्यय का उचित रीति से पूर्ण हिसाब रखना चाहिए। रानडे महोदय अपना सब हिसाब अपने हाथ से ही लिखते थे। वे अपनी पत्नी को भोजन मात्र के लिये सौ रुपया देकर कहते थे कि 'इसमें महीने भर का खर्च चलाना।" उनकी पत्नी उसका हिसाब रखती थीं और रानडे स्वयं रात को आय-व्यय की रोकड़ मिलाकर सोते थे। हिसाब रखने से पहिला लाभ यह होगा, कि तुम शीघ्र ही अपने व्यय को आय के भीतर ही रख सकोगे।

× × × ×

यदि तुम सुखी होना चाहते हो, तो कभी कर्ज़दार मत बनो। अनेक आदमी एक बार कर्ज़ लेकर अपनी शक्ति, अपने मान और अपने आत्म-विश्वास को बेच चुके हैं। वे जब कर्ज़ लेते हैं, तो उन्हें यह विदित नहीं होता कि वे अपने गले में एक भारी बोझ बाँध रहे हैं। यह ऋण का बोझ दिन-पर-दिन बढ़ता ही जाता है और अनेक आदमियों के तो गलों को घोंटकर ही छोड़ता है। अनेक आदमी इसलिये आत्मघात कर लेते हैं, क्योंकि वे अपने ऋण को चुकाने में असमर्थ होते हैं।

शेक्सपियर कहता है—"न तो उधार लो और न उधार दो। उधार देने से ग्राहक और रुपया दोनों हाथ से चले जाते हैं।" हमें न तो कोई चीज़ उधार लेना चाहिए न देना ही। उधार में दोनों को ही हानि है। प्रायः दस उधार लेनेवालों में एक नादिहंद हो ही जाता है।

दूकानदार उस रकम की पूर्ति बाकी के बचे हुए नौ ग्राहकों से पूरी करता है, क्योंकि तेल तो तिल्लों से ही निकलता है।

उधार में कुछ ऐसा जादू है कि हम बिना ज़रूरत भी अनेक चीज़ें ख़रीद लेते हैं। हम एक चीज़ को उधार लेते हैं, उस समय हमें अपने पास से कुछ नहीं देना पड़ता, इसलिये हम उस वस्तु के विषय में लापरवाह होते हैं। दूकानदार भी देखता है कि उसे इस समय कुछ नहीं मिला, इसलिये ख़राब चीज़ ही ग्राहक के सिर मढ़ता है। यदि दूकानदार नक़द बेचता, तो वह उस रुपए को दूकान में लगाता, जिससे उसे और भी लाभ होता। उधर ग्राहक बुरे माल और हिसाब रखने के झंझटों से बच जाता।

छोटी-छोटी चीज़ें कभी उधार मत लो। देखने में तो यह कोई बड़ा ऋण नहीं है, परन्तु दो-दो चार-चार आने की चीज़ें उधार लेने से ही वर्ष भर में एक बड़ी रकम हो जाती है। उस समय वह रकम देना अवश्य अखरता है।

बड़े शोक की बात है कि अनेक विद्वान् और अनुभवी पुरुष भी इस दुष्ट ऋण के चंगुल में फँसकर अपने जीवन को दुखांत बना लेते हैं। बेकन गोल्डस्मिथ, सर वाल्टर स्कॉट, शेरीडन बर्न्स आदि इनके उदाहरण हैं। हमारे इस देश में भी सहस्रों ऐसे शिक्षित और योग्य मनुष्य मिलेंगे, जिनका जीवन ऋण के कांटों से छिद रहा है।

बंधुओ! यदि मानसिक शांति, जीवन का सुख और हृदय का आनंद चाहते हो, तो किसी के एक पाई के भी क़र्ज़दार न बनो। यदि तुम्हें किसी कारणवश ऋण लेना ही पड़ा है, तो उसे तुरन्त चुकाने की चेष्टा करो, नहीं तो वह हनुमान की तरह तुम्हें अपनी पूँछ के चक्कर में कस लेगा।

यदि तुम किसी के क़र्ज़दार नहीं बनना चाहते, तो सारे अपव्ययों का नाश कर दो। जो मनुष्य अपनी आय से अधिक व्यय कर रहे हैं,

वे अवश्य ही राक्षस-स्वरूप ऋण के पंजे में फँस रहे हैं। यदि तुम्हारी आय बहुत ही कम है, तो भी कोई चिंता की बात नहीं। उसी में अपना ख़र्च चलाओ और निस्सन्देह तुम्हें सुख और आनंद मिलेगा। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने पचास रुपया मासिक की नौकरी में अपने कुटुम्ब को सुख-पूर्वक चलाया था और उसी में से अनेक निर्धन विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ भी दी थीं। परन्तु वास्तव में बात यह है कि हमारा विचार तो यह रहता है कि किसी तरह भी हम दूसरों से कम न समझे जावें। चाहे हम कितने ही निर्धन हों, चाहे हमारी आमदनी कितनी ही थोड़ी हो, चाहे हम कुटुम्ब को भली प्रकार पालन भी न कर सकते हों, परंतु हम संसार में अपने को अमीर ही दिखलाना चाहते हैं। इस दिखावे के लिये ही हमें आय का एक बड़ा अंश दिखाने की चीज़ें ख़रीदने में ख़र्च कर देना पड़ता है, जिससे हमें अपनी दूसरी आवश्यकताओं के लिये क़र्ज़ लेना पड़ता है। क़र्ज़ लेकर अमीरी दिखाने से प्रतिष्ठा मिलना तो दूर रहा, कभी तो सारी इज़्ज़त मिट्टी में मिल जाती है।

नवाँ मोर्चा

सदाचरण

"रागद्वेष विमुक्तैस्तु विषया निन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यै विधेयात्मा प्रसादमधि गच्छति॥"

—भगवान कृष्ण

× × ×

"चूं इन्शारा न बाशद फ़जलो एहसाँ,
ते फ़र्क़ आदमी बा नक्श दावार ॥
हाजी ते नेतो शुत रस्त अज़वाये आंके ।
वेचारा खारमी खुरद व बारसो बरद ।" —शेख़सादी

× × × ×

"जीवन-कल्प-लता को, सींचे सन्तत सुकर्म-जीवन से ।
धीर सदाचारी नर, पावें सुन्दर सुमिष्ट फल उससे ॥

× × × ×

"यदि ईश्वर और शासक का भय न हो, तो भी पाप नहीं करना चाहिए, यही सच्चा सदाचरण है ।"

—सैनिक

× × ×

"संसार में सद्स्वभाव से असंख्य लाभ होते हैं और अच्छा स्वभाव, संसर्ग, विद्या, अनुभवों के प्रभाव से प्रभावित होते हैं; सुशिक्षा से ही धर्माचरण की सृष्टि होती है ।"

× × ×

"The noble minded dedicate Themselves,
To the promotion of the happiness.
Of others e'en of those who injure them,
True happiness Consists in making happy"

—Bharavi.

जो मनुष्य अंतःकरण की शिक्षा पर सदैव ध्यान देते हैं, उसके विरुद्ध कभी कोई कार्य नहीं करते, उनकी [illegible] शक्ति और प्रबल हो जाती है । वह उसके लिए पग पग पर पथ-प्रदर्शक का काम करती है और उसे पद-दलित होने से बचाती है । वह उसे [illegible]

सहायता से शीघ्र ही निर्धारित कर लेता है कि कौन-सा मार्ग ठीक है और कौन-सा ग़लत। मि० ब्यूलर का विचार है कि 'जीव के लिये अन्तरात्मा ऐसी ही है, जैसा शरीर के लिये स्वास्थ्य।'

पादरी चेनिंग लिखते हैं—'मस्तिष्क का विकाश हमें एक पग भी ईश्वर की ओर नहीं बढ़ा सकता, जब तक उसमें संयम, इन्द्रिय दमन और अंतःकरण की पुकार न हो। उस अनन्त शक्ति के जानने के लिये हमें अपनी आत्माओं को बाहर निकाल कर देखना चाहिए, अन्यथा वास्तव में हम उसे कभी नहीं जान सकेंगे।' उदाहरणार्थ हम पवित्रता अथवा पापों का विनाश आदि विषयों को केवल पढ़ लें या उनपर विचार कर लें, परन्तु जब तक अपनी अन्तरात्मा को, अपनी सब बुराइयों को दिखाने के लिये प्रेरित न करें, तब तक हम उन्हें भलीभाँति नहीं समझ सकते हैं। अन्तःकरण के द्वारा हम परमात्मा की आज्ञा को जान सकते हैं।

एक मनुष्य ने हजरत मुहम्मद से पूछा—'पाप यथार्थ में क्या है?' उन्होंने उत्तर दिया 'कोई चीज़ तुम्हारे हृदय में चुभे और तुम उसकी परवाह न करो।' प्रत्येक समय जब हम अंतःकरण के विरुद्ध कार्य करते हैं, तो हमारी कुछ-न-कुछ शक्ति क्षीण हो जाती है। उसकी नित्य अवहेलना करने से धीरे-धीरे वह कमज़ोर पड़ जाती है और अन्त में चुप हो जाती है। एक मनुष्य जब पहिली बार चोरी करता है, तब आत्मा उसे बड़े बल से रोकती है; परन्तु धीरे-धीरे उसकी अंतरात्मा इतनी क्षीण हो जाती है कि फिर वह उसे नहीं सुनाई देती। वह मनुष्य फिर पक्का चोर हो जाता है।

अंतःकरण की हत्या करना मानों स्वयं अपनी हत्या ही कर लेना है। जिनकी अंतरात्मा नष्ट हो चुकी है, वे अपने एक हितू मित्र और पथ-प्रदर्शक को खो चुके हैं। वे इस संसार में उन नेत्र-हीन मनुष्य के समान हैं, जो बिना लाठी के गहरे और ऊँचे-नीचे गार में छोड़ दिए गए हैं। जिनकी अन्तरात्मा पतित हो चुकी है, उस मनुष्य का पाप-पंक

में-से निकलना बहुत ही कठिन है। उसे धर्म-अधर्म का ज्ञान ही नहीं हो सकता और न उसे धर्म पर विश्वास ही हो सकता है।

जो मनुष्य-संसार में सफलजीवन के अभिलाषी हैं, उन्हें अपनी अंतरात्मा को जागृत करना चाहिए। अन्तःकरण को बलवान बनाने का यही उपाय है कि तुम उसकी कभी अवहेलना मत करो। वह जो कुछ कहे सुनो और कार्यरूप में परिणत करो। यदि तुम अंतःकरण की आज्ञा पालन करना सीख लो, तो तुम्हें मोटी-मोटी धार्मिक पुस्तकें पढ़ने; अध्ययन करने की अधिक आवश्यकता ही न रहे। क्योंकि वे पुस्तकें भी अन्तरात्मा के सदुपयोग का परिणाम ही हैं। अन्तःकरण बड़ा धर्म और राजकीय नियम है।

लोग ढूँढ़ते हैं शांति। शांति कहाँ है? अन्तरात्मा को बिना राजी किए हुए कोई शांति प्राप्त ही नहीं कर सकता। सारे संसार का धोखा दिया जा सकता हैं, परन्तु अपनी आत्मा को कौन धोखा दे सकता है? आप सारे संसार के सम्मुख पंडित, विद्वान, धनी, महात्मा बन जाइए, परन्तु यदि यह सब ढोंग है, यदि आपके कर्म यथार्थ में शुद्ध नहीं हैं, तो आपके हृदय में एक गुपचुप पीड़ा अवश्य हो रही होगी। संसार उसे नहीं जानता, परन्तु आप जानते हैं। उसे आप निकाल भी नहीं सकते, बस आप शांति! शांति!! चिल्लाते रहिए, परन्तु आपको शांति नहीं मिलेगी।

झोपड़ियों की कठिन भूमि पर पड़े और चिथड़ों की गुदड़ी अपने शरीर से लपेटे हुए मनुष्य का हृदय यदि शुद्ध है और अन्तरात्मा संतुष्ट है तो वह अनेक राकफेलर और कार्नेगी से भी अधिक सुखी है। इसके विपरीत असंतुष्ट अन्तरात्मावाले जगत सेठ भी दुःख के कोल्हू में पिल रहे हैं। हम अनेक करोड़-पतियों के जीवन को सफल जीवन समझते हैं। आओ आज उनके हृदय को टटोलें और देखें। उनमें सुख की मात्रा कितनी है। निस्सन्देह अनेक सामयिक पत्र उनके प्रशंसा के पुल बाँधते

रहते हैं, अनेक सभाओं में लोग उनकी जय-ध्वनि से आकाश गुंजा देते हैं, परंतु उनकी अंतरात्मा बराबर बताती रहती है कि यह सब मिथ्या है। वे जब अपने विशाल कारखानों को देखकर अभिमान से फूल जाते हैं, तो अन्तरात्मा अनेक कुलियों के पीले और रोगी-चेहरे उनके सामने लाकर कहती है—'देख! तूने जो विशाल धन इकट्ठा किया है, उनका प्रत्येक रुपया इनके रक्त से सना हुआ है। तेरी जो विशाल अट्टालिकाएँ दृष्टि गोचर होती हैं, वे सहस्रों निरपराध मनुष्यों की हड्डियों और रक्त से खड़ी की गई हैं। संसार कहता है, तूने सफलता प्राप्त की है; परन्तु वास्तव में तूने अपना सारा धन खो दिया है।'

इसलिये एक कार्य की सत्यता जाँच करने के लिये पहिले अपनी गवाही लो और फिर संसार भर की। यदि प्रत्येक कार्य में तुम अंतरात्मा की सम्मति प्राप्त कर लिया करो, तो तुम्हारी शांति को कोई नष्ट नहीं कर सकता। संसार भर का विरोध करने पर भी तुम यदि अपनी अंतरात्मा का पालन कर सको, तो तुम्हें कोई भी सफलता प्राप्त करने से नहीं रोक सकेगा।

× × × ×

सब धर्मों का सारांश चित्त-शुद्धि है। चित्त-शुद्धि के लिये आत्म-शासन की आवश्यकता होती है। आत्म-शासन के लिये मनुष्य को इंद्रिय-संयम करना चाहिए। इंद्रिय-संयम का यह अर्थ नहीं है कि हम अपनी इंद्रियों का बिलकुल नाश कर डालें। उसका तात्पर्य यही है कि हम सब इंद्रियों को नियमित कर दें। संयमी वह मनुष्य है, जो ईश्वरीय नियम-पालन करने के लिये आवश्यक विषय भोग करता है, परन्तु उनमें लिप्त तथा अंधा नहीं हो जाता। उसे उसमें कोई आनन्द नहीं मिलता, परंतु वह उसे अपना कर्त्तव्य और ईश्वरीय आदेश समझ कर करता है।

चाहे कोई मनुष्य शरीर पर गेरुए वस्त्र धारण करके जंगल में कठोर

तपस्या करने के लिये चला जाय, परन्तु यदि इंद्रिय-तृप्ति की लालसा उसमें अभी तक बनी हुई है, उसने अपने मन का कलुष नहीं धोया है, तो वह इंद्रिय संयम से कोसों दूर है। एक मनुष्य संसार के कोलाहल में रहकर भी संयमी रह सकता है और संभव है दूसरा मनुष्य संसार से कोसों दूर वन में रहकर और घास-पात खाकर भी न रह सके।

बुरे या अच्छे कार्य के तीन साधन हैं—मन, वचन और कर्म। कोई मनुष्य वचन और कर्म से तो पवित्र हो, परन्तु मन उसका शुद्ध न हो, तो वह कभी शुद्ध नहीं बन सकता। बहुत-से मनुष्य वचन और कर्म से तो निष्पाप रहते हैं, परन्तु वे अभी तक मन को काबू में नहीं कर सके हैं। उनका चित्त अभी तक विषय-वासनाओं की ओर दौड़ता है। वे वचन और कर्म से परस्त्रीगमन नहीं करते, परन्तु मन उस ओर दौड़ जाता है, तो वे अवश्य उस पाप के भागी हो चुके हैं।

एक विद्वान कहता है—यदि कोई मनुष्य इतना लंबा हो कि वह ध्रुव तारे को स्पर्श कर सके अथवा सृष्टि को अपनी मुट्ठी में ले सके, परन्तु उसके कार्य का परिणाम उसकी आत्मा से ही मालूम करना चाहिए, मन ही मनुष्य का माप है।

चित्त-शुद्धि का उपाय केवल यही है कि कठोर उपवासों और कष्ट सहकर शरीर को क्षीण कर दिया जाय। यदि हम सुसंगति में बैठें-उठें, नियम-पूर्वक धर्म पुस्तकें पढ़ें, प्रतिदिन चित्त को स्थिर करने का अभ्यास करें और सदैव उत्तम विचारों को मस्तिष्क में स्थान दें, तो निस्संदेह हम चित्त-शुद्धि की ओर जा रहे हैं। चित-शुद्धि का एक मुख्य और प्रबल साधन यह है कि मन को बुरी जगह में न जाने दो। समझ लो कि मस्तिष्क कभी खाली नहीं रह सकता। एक कहावत है—'खाली मस्तिष्क भूतों का डेरा है।' यदि तुम्हारे मस्तिष्क में अच्छे विचार नहीं हैं, तो बुरे विचार आकर उसे घेर लेंगे। मस्तिष्क में एक बार बुरे

विचारों को आ जाने दीजिए, फिर वे धीरे-धीरे करके अपना अड्डा जमा लेंगे।

भगवान् श्रीकृष्ण गीता में बताते हैं—

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

विषयों से ध्यान करनेवाले मनुष्य के मन में पहले विषयों के लिये प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीति से इच्छा पैदा होती है, इच्छा से क्रोध पैदा होता है, क्रोध से भ्रम होता है, भ्रम से स्मृति की हीनता होती है, स्मृति-हीनता से बुद्धि नष्ट हो जाती है; बुद्धि के नष्ट होने से आदमी ही नष्ट हो जाता है। आगे चलकर वे कहते हैं—'जिसने चित्त को वश में नहीं किया है, उसकी बुद्धि स्थिर नहीं हो सकती; जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं है, उसे आत्म ज्ञान नहीं हो सकता, जिसे आत्म ज्ञान नहीं है उसे शांति नहीं मिल सकती, जिसे शांति नहीं है उसे सुख कहाँ से मिल सकता है?

इसलिये चित्त-शुद्धि ही सब साधनों की जड़ है।

× × × ×

संसार में अनेक आदमी हैं जो केवल अपने लिये ही जीते हैं और थोड़े से इने-गिने वे हैं, जो दूसरों के लिये जीते हैं। प्रथम वे हैं जो रुपयों की थैली लादते हैं। उनका सिद्धान्त है 'खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ।' यदि निर्धन, विधवा, अनाथ भूखों मर रहे हैं तो उन्हें कोई चिंता नहीं है। वे पग-पग पर अपने ही आराम को देखते हैं। वे अपनी सुख की वाटिका निर्बलों के रक्त से सींचते हैं; क्योंकि निर्बल तो उनकी सेवा और सुख के लिये बन ए हो गए हैं। वे यदि सुखी हैं, तो संसार सुखी है। दूसरे वे हैं, जो दूसरों के कष्ट को अपना ही कष्ट समझते हैं,

जिनके विचार में धन इसलिये दिया गया है कि वह उससे निर्धनों की आवश्यकताओं को पूरा करें। एक अपस्वार्थी होते हैं, दूसरे परस्वार्थी।

परोपकार, दान, निस्वार्थ सेवा आदि कार्यों की हिन्दू शास्त्रों में बड़ी प्रशंसा है। संसार में कोई संप्रदाय, मत अथवा धर्म ऐसा नहीं है जो इनकी महत्ता स्वीकार नहीं करता हो। वे मनुष्य धन्य हैं, जिनके हाथ निर्धनों, विधवाओं, अनाथों की सहायता करने में सदैव व्यस्त रहते हैं और जिनके घर से कभी सहायता पाने योग्य मनुष्य फिर कर नहीं जाता। वे ईश्वर के प्रेम पात्र हैं, जिन्होंने देश, समाज और दुखियों के उपकार के लिये अपना जीवन अर्पण कर दिया है।

मुसलमानों की धर्म-पुस्तक का वाक्य है—'मनुष्य की सच्ची संपत्ति केवल वह भलाई है, जो वह इस संसार में अपने साथियों के साथ करता है। जब वह मर जायगा, तब लोग पूछेंगे कि वह कितनी संपत्ति छोड़ गया, परन्तु फ़रिश्ते जो कि कब्र में उसकी जाँच करेंगे उससे पूछेंगे कि तूने अपने साथियों के साथ कौन कौन से उपकार किए हैं?'

यदि तुम अपने किसी दुश्मन पर विजय प्राप्त करना चाहते हो, तो उसके साथ एक उपकार का काम करो। उपकार से यदि चाहो, तो सारे संसार को जीत सकते हो। उपकार के बदले में कभी किसी पुरस्कार अथवा प्रतिफल की इच्छा न करो। इसलिये किसी के साथ उपकार मत करो कि कल वह भी तुम्हारे साथ उपकार करेगा। एक बार इटली देश की नदी में एक बाढ़ आई। उस नदी का सारा पुल बह गया, सिर्फ़ बीच का कुछ अंश बच रहा, जिसपर एक घर बना हुआ था उस घर के आदमी खिड़कियों में-से बाहर झाँक-झाँक कर आस पास वालों को सहायता के लिये पुकारने लगे; क्योंकि पुल का वह अंश, जो अब तक बचा हुआ था, बहने ही को था। नदी के किनारे दर्शकों की भीड़ में-से एक धनाढ्य मनुष्य बोला—'अगर कोई उस घर

के आदमियों को बचा दे तो मैं उसको सौ मोहरें दूंगा।' यह सुनकर एक ग़रीब किसान युवा नाव लेकर नदी में चला गया और उसके घर के आदमियों को नाव में बिठाकर किनारे पर ले आया। इस तरह जब उन लोगों की जान बच गई, तब उस धनाढ्य ने किसान से कहा—'यह लो सौ मोहरें।' किसान ने उत्तर दिया—'यह इनाम लेकर मैं मनुष्यत्व को नहीं बेचूंगा। यह रुपया इन्हीं बेचारों को दे दो, क्योंकि इनको रुपए की जरूरत है।'

यदि तुम किसी के साथ कोई उपकार कर दो, तो सबके सम्मुख उसकी चर्चा मत करते फिरो। यदि तुम दीन, दुखियों को दान द्वारा कुछ सहायता देते हो, तो तुम्हें गर्व करने का तनिक भी स्थान नहीं है। निस्सन्देह ऐसा करने से तुम अपना केवल कर्तव्य-पालन कर रहे हो। तुम्हें इस बात का भी अधिकार नहीं है कि तुम इस बात की इच्छा करो कि उपकृत मनुष्य तुम्हारे उपकार के बदले में बड़ी-बड़ी कृतज्ञताएँ प्रगट करे। तुम तो ईश्वर के केवल रोकड़िए मात्र हो और उसी के आदेशानुसार धन देते हो। फिर तुम धन पानेवाले से इस बात की क्यों आशा रखते हो कि वह तुमको धन्यवाद दे?

उस मौत से और कौनसी मौत अच्छी हो सकती है, जो दूसरों के लिये हो? जरा, रोग, दुख से मरने से जो दूसरों के उपकार के लिये मरना सहस्रगुना अच्छा है। इसलिये जहाँ कोई ऐसा मौका आवे, उसे कभी हाथ से जाने नहीं देना चाहिए। एक बार प्रशांत महासागर में एक जहाज अकस्मात दूसरे जहाज से टकरा गया, जिससे उसमें एक बड़ा छेद हो गया। छिद्र से पानी जहाज में भरने लगा और चारों ओर हाहाकार मच गया। समुद्र में नौकाएं छोड़ी गईं और उसमें स्त्रियों और बच्चों को उतारा जाने लगा। सबही अपनी-अपनी जान बचाने की फ़िक्र में थे। उस समय एक नवयुवक बड़ी ही सरगर्मी से लोगों को जान बचाने में सहायता दे रहा था। जब सब यात्री नावों में बैठ गए,

तब दूसरे कोने से एक वृद्ध की चिल्लाहट सुनाई दी। मना किए जाने पर भी उसे बचाने के लिये वह युवक जहाज के बचे हुए कोने पर फिर चढ़ गया, परन्तु वह वृद्ध के पास पहुंचने भी न पाया था कि जहाज का बचा हुआ कोना भी समुद्र की तह में समा गया और उसके साथ ही नवयुवक भी लहरों में विलीन हो गया।

परोपकार करते समय जाति-पाँति का कोई भी विचार न आना चाहिए। भगिनी निवेदिता का जीवन परोपकार का आदर्श था। वे एक धार्मिक और सहृदय अंगरेज देवी थीं और उनका जन्म इङ्गलैंड के मैनचेस्टर नामक नगर में हुआ था। वे हिंदुस्तान की सेवा के उद्देश्य से अपने घर-बार, कुटुम्बियों को छोड़कर भारत के लिये चल पड़ीं। उन्हें पहिले पहिल यहाँ के पुराने विचारों के कारण बड़ी कठिनाई हुई। पहिले तो कोई उन्हें रसोइया या नौकर ही नहीं मिल सका, क्योंकि पर कौम के नौकर को रखकर वे हिन्दू-पड़ोसियों के दिल का दुखाया नहीं चाहती थीं। इसी से रसोई बनाना मालूम न होने के कारण उन्हें कुछ दिन केवल फल खाकर ही गुजारा करना पड़ा। उनकी इस सहृदयता पर आस-पास के पड़ोसी आकर्षित हुए। वे केवल धैर्य और प्रेम से लोगों पर धीरे-धीरे किस प्रकार इतना बड़ा विश्वास पैदा कर सकीं, यह एक अद्भुत बात है। उन्होंने अपने घर में ही बालकों के लिये किंडर-गार्टन पाठशाला खोल दी और स्त्रियों के पढ़ने का ढंग भी धीरे-धीरे डाल दिया।

भगिनी निवेदिता को अनाथ बालक और निराश्रय विधवाओं पर बड़ी दया आती थी और उन्होंने उपकार के लिये 'वनिताश्रम' और 'सेवासदन' दो संस्थाएं भी खोल दीं। वे इन आश्रमों की व्यवस्था के लिये किसी से एक पैसा भी न लेती थीं। आप जो पुस्तकें लिखती थीं, उसकी आमदनी से और विलायत में एक मनुष्य—जो इन्हें अपनी पुत्री समझता था, उसकी मदद से इस आश्रम का खर्च चलाती थीं।

थे दयालु इतनी थीं कि अपने निर्वाह के लिये कुछ भी न रखती थीं, सब परोपकार में ख़र्च कर डालती थीं।

इसी बीच में कलकत्ते में महामारी फैल गई, स्टीमर और रेलगाड़ियाँ भागते हुए लोगों से भरी हुई देखने में आने लगीं। जब बाप-बेटे को, भाई-भाई को रोगशय्या पर छोड़कर भाग रहा था, उस समय देवी निवेदिता लोगों की सहायता के लिये निकल पड़ीं। उन्होंने परोपकारी नवयुवकों का एक मण्डल स्थापित करके उत्तरीय भाग को-जो बड़ा गंदा था, स्वच्छ करवाया। प्लेग का रोग छूने से शरीर में लग जाता है, यह जानते हुए भी बीमार लोगों की सेवा का भार इनने अपने ऊपर ले लिया। प्लेग से बीमार बालकों ने उनकी गोद में ही प्राण छोड़े थे। एक समय निवेदिता ठंढ से थर थर काँप रही थीं; पर अपने नौकर को ठंढ से दुखी देखकर उन्होंने उसे अपना कम्बल इसलिये दे दिया कि उनसे अधिक इसको इस कपड़े की ज़रूरत है।

उन्हें जब यह मालूम हुआ कि पूर्व बंगाल में बड़ा अकाल पड़ रहा है और हज़ारों आदमी उससे दुख पा रहे हैं, तो तुरन्त उन्होंने वहाँ जाने का निश्चय कर लिया। वहाँ कीचड़-पानी में घूमते-घूमते इन्हें भयानक मलेरिया बुख़ार ने आ घेरा। परन्तु वे रुग्णावस्था में भी परोपकार में लगी ही रहीं। उन्हें जब किसी तरह आराम हुआ, तब वे फिर परोपकार में कठिन परिश्रम करने लगीं। वे एक बार फिर बीमार हुईं और फिर न उठ सकीं। धन्य है देवी! इस संसार में ऐसे परोपकारी जीव कितने होते हैं?

× × × ×

मनुष्य की प्रथम और अंतिम आवश्यकता यह है कि वह ईश्वर का आश्रय ग्रहण करे, ईश्वर के प्रेम में रत रहे और जो काम भी करे, उसे ईश्वर का आदेश समझ कर करे। जो मनुष्य दिन-रात अपने व्यवसाय और घरेलू झगड़ों में रत रहते हैं, जिन्हें दो घड़ी भी ईश्वर के

चरणों में बैठने का सुअवसर प्राप्त नहीं होता, जिन्हें ईश्वर की महाशक्ति में विश्वास नहीं है, वे मनुष्य उन गोतेखोरों के समान हैं, जो मोती की सीपें छोड़कर घोंघे बटोरने में लगे हुए हैं।

मृत्यु क्या है? साधारण शब्दों में मृत्यु आत्मा का शरीर त्यागना समझते हैं। यदि यह सत्य है कि शरीर से आत्मा का निकलना शरीर की मृत्यु है, तो परमात्मा जो आत्मा के भी आत्मा हैं और आत्मा में इस प्रकार निवास करते हैं, जिस प्रकार आत्मा शरीर में निवास करता है, तो वह आत्मा चेतन होते हुए भी मृत क्यों न होगा, जिसमें ईश्वर का प्रेम नहीं है। ईश्वर ही तो आत्मा का जीवन हैं! उपनिषद् कहता है:—

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो,
ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्च चक्षुरति मुच्य धीराः प्रेत्या·
स्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ केन १।२ ॥

अर्थात् परमात्मा ही आत्मा के मन का मन है। परमात्मा ही आत्मा की वाक्यशक्ति है और परमात्मा ही आत्मा का प्राणधार है इत्यादि। इसलिये वेद भगवान कहते हैं-'यस्यच्छाया मृतं यस्य मृत्युः' परमात्मा को अपने आत्मा में अनुभव करना और उसी को अपना कर्ता, हर्ता अनुभव करते हुए रात-दिन उसी के प्रेम में, उसी की भक्ति में अपने आपको लीन रखना ही आत्मा का जीवन है; आत्मा के जीवित होने के चिन्ह हैं और उससे दूर हो जाना अर्थात् उसकी भक्ति से शून्य हो जाना, मानों आत्मा का आत्मा से रहित हो जाना है। आत्मा का जीवन परमात्मा है, आत्मा का प्राण परमात्मा है, उसी की भक्ति करने से, उसी की शरण लेने से, उसी के प्रेम में मग्न रहने से आत्मा जीवन-लाभ कर सकता है, सफल अर्थात् मुक्त हो जाता है।

अब हमें यह तो ज्ञात हो ही गया कि ईश्वर-प्रेम ही सब सफलताओं

की कुञ्जी है। अब प्रश्न यह होता है कि हम ईश्वर-भक्ति कैसे कर सकते हैं, लोग कहते हैं कि नित्य प्रति हम संध्या तो करते हैं, पर उसमें चित्त नहीं लगता। हम प्राणायाम करते हैं, परन्तु मन एकाग्र नहीं होता। हम प्रार्थना करते हैं, पर शांति नहीं मिलती। उनका यह कथन मिथ्या नहीं है, क्योंकि जब तक हम अपना और ईश्वर का सम्बन्ध ही नहीं जानते, जब तक हमें यह ज्ञान नहीं है कि भक्ति की क्या पद्धति है और अंतिम, पर मुख्य जब तक हमें उनमें विश्वास ही नहीं है, तब तक केवल किसी क्रिया मात्र के करने में कोई भी लाभ नहीं हो सकता। जो बिना विश्वास तथा प्रेम के नियमों को लाँघकर ईश्वर-भक्ति के इच्छुक हैं, वे तो उस बैल के समान हैं, जो रात-दिन कोल्हू के चारों ओर घूमता रहता है। वह समझता है, मैं आज बहुत चला और स्यात् सैकड़ों मील की दूरी पर आ गया हूँ, परन्तु जब उसकी आँखों की पट्टी खुलती है, तब वह दीन अपने आपको वहीं देखता है, जहाँ वह प्रातःकाल था। इसी प्रकार घण्टों नेत्र मूँद कर बिना ईश्वर में विश्वास किए हुए बैठे रहने से हमारे जीवन की गति आगे नहीं बढ़ सकती। बगुला भी तो नदी के तट पर आँख मूँदकर और टाँग उठाए घंटों खड़ा रहता है, परन्तु केवल टकटकी लगाने अथवा नेत्र मूँदकर बैठ जाने से ईश्वर-प्राप्ति नहीं हो सकती। ईश्वर-प्राप्ति के लिये भक्ति की आवश्यकता होती है और भक्ति का मुख्य कारण ब्रह्म सम्बन्ध है। जब तक ब्रह्म के साथ आत्मा स्व-सम्बन्ध को अनुभव नहीं करता, तब तक वह ईश्वर के प्राप्ति में कैसे सफल हो सकता है।

अच्छा तो आत्मा का परमात्मा से क्या सम्बन्ध है? उपनिषद् के एक श्लोक का भावार्थ है—'जैसे नदी का सम्बन्ध समुद्र से है, उसी प्रकार आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से है।' अनेक नदियाँ पहाड़ों, जंगलों, नगरों के भीतर से प्रेम और भक्ति का गीत गाती हुई अपने नाम को त्याग कर प्रेम सागर में लीन हो जाती हैं। उसी प्रकार

मनुष्य भी संसार के भोगों को भोगते हुए तथा परमात्मा के आदेश का पालन करते हुए परमात्मा में लीन हो जाते हैं। जब आत्मा इस संबंध को अनुभव कर लेता है कि इस विशाल संसार में चारों ओर उसी का प्रकाश है, चारों दिशाएँ उसी की ज्योति से आलोकित हो रही हैं, वही सब आत्माओं में विराजमान है। वह सब पदार्थों में उसी का हाथ देखता है, उसी को सबमें देखता है और सबको उसी में देखता है।

दिन-रात भजन-पाठ करने, चार दफ़े षटरस भोजन करने, शयन करने, नाना प्रकार के भोग भोगने के पश्चात् भी हमारी आत्मा से यही निकलता है—'आत्मा शून्य है, तृप्त नहीं हुई।' इसे विदित होता है कि नाना प्रकार के भोग करने पर भी किसी आवश्यक बात की कमी रह ही गई, वह कमी ईश्वर-प्रेम ही है।

शांति, सफलता, आत्म-तृप्ति एक मात्र ईश्वर-प्रेम से ही हो सकती है। ईश्वर-प्रेम के लिये इस बात की आवश्यकता नहीं है कि तुम घर-बार छोड़कर जंगल में ही चले जाओ। यदि तुम ईश्वर को अपने प्रत्येक कार्य में अनुभव करने लगो तो तुम्हारी सारी मनोकामनाएँ सिद्ध हो जायेंगी और तुम्हें फिर शांति मिलेगी।

उपसंहार

---*---

जीवन-युद्ध में विजय

जिन सैनिकों के हृदय निर्बल हैं, जिनके पैर कर्म मार्ग में बढ़ते हुए थरथराते हैं, जिनके हाथ शस्त्र उठाते हुए काँपते हैं, वे इस जीवन युद्ध में किस तरह विजय प्राप्त करेंगे ? जिनके हृदय निराशा की लपटों से मुरझा चुके हैं, जिनके नेत्र घबड़ाहट के धुएँ से धुँधला गए हैं, जिनके कान गोली और बारूद के फटने की आवाज़ से बहरे हो गए हैं, भला ऐसे सैनिक इस महान युद्ध में क्या विजय प्राप्त करेंगे ? इस युद्ध में तो विजयी वही होंगे, जिनमें शक्ति है, जिनका मस्तिष्क और हृदय सबल है, जो आँधी और तूफान की तरह बढ़ना जानते हैं; जिनके हाथ और पैर लोहे की शक्ति से काम करते हैं, जिनके नेत्र से साहस की चिनगारियाँ निकलती हैं, जिनके कान बड़े बड़े गोलों के फटने के आदी हो गए हैं ऐसे सैनिक को विजय प्राप्त करने से कौन रोक सकता है ?

यदि तुम विजयी बनना चाहते हो, तो विजयी सैनिकों की-सी चेष्टा करो, अपने चरित्र की कमज़ोरियों को एक-एक कर निकालना प्रारंभ कर दो और चरित्र-बल की एक-एक पंखुड़ी को चुनकर अपना हृदय सबल बनाते रहो ! यह कभी मत सोचो कि तुम संसार में महान

पुरुष बनने के लिये, विजय प्राप्त करने के लिये योग्य नहीं हो और महान पुरुष के लिये जन्म से ही कुछ विशेष पदार्थ होता है, जो तुम में नहीं है। ईश्वर ने प्रत्येक मनुष्य को महान कार्य करने के लिये और विजय प्राप्त करने के लिये बनाया है और तुममें कितनी भी कमज़ोरियाँ आ घुसी हों, तब भी अगर तुम चाहो, तो विजय-माल पहन सकते हो।

एक बात और याद रक्खो, विजय केवल धन एकत्रित करने, राष्ट्र और समाज का नेतृत्व ग्रहण करने, चारों ओर जयजयकार होने और समाचारपत्रों में प्रशंसा छपने ही में नहीं है एक किसान जो ईमानदारी से मेहनत करता है, दूसरों का पेट पालन करता है और अपने घर और बाल-बच्चों को भी सुखी बनाने में प्रयत्नशील होता है, अपनी सन्तान को योग्य नागरिक बनाने के लिये स्वयं एक दफ़े भोजन करके उन्हें शिक्षा देने की चेष्टा करता है, उसके जीवन में सच्चाई है, मेहनत है, त्याग है, ईश्वर-प्रेम है, क्या उसका कार्य उस मनुष्य से कम महान है, जो व्याख्यान देता है, पुस्तकें लिखता है, स्कीम बनाता है। संसार में यदि वास्तविक विजयी लोगों का इतिहास लिखा जाय, तो मुझे विश्वास है कि वह इतिहास आज के इतिहास से बिलकुल ही भिन्न होगा। क्या सिकन्दर या तैमूर को हम विजयी समझें, जिन्होंने संसार में रक्त की नदियाँ बहा दीं, जिनकी तलवार से पृथ्वी लाशों से पट गई, जिन्होंने ग़रीबों का लूटकर अपने ख़ज़ाने भरे, जिन्होंने निर्धन लोगों की झोंपड़ियाँ अग्नि के अर्पण कर अपने हृदय की उग्र वासनाओं को पूरा किया, जिनका जीवन संसार में केवल क्रन्दन और रोदन पैदा करने के लिये हुआ। जिन लोगों ने मनुष्यत्व, त्याग, प्रेम, दया आदि को पैर तले कुचला, जिसके हर काम ने संसार में आग लगा दी, आज हमारा इतिहास उन्हें विश्व-विजयी कहकर पुकारता है और जिन लोगों ने दूसरों के लिये त्याग किया, जिन्होंने श्रम से अपनी जीविका पैदा की जिन्होंने दूसरों के मार्ग कंटक-कीर्ण बनाने के बजाय निर्धन और तकलीफ़ में रहना

पसन्द किया अर्थात् जिनके त्याग, श्रम, प्रेम, दया आदि गुणों से संसार को सान्त्वना मिली, जिन्होंने संसार को वास्तव में स्वच्छ और रहने योग्य जगह बनाया, उनका इतिहास में नाम तक नहीं है। यदि संसार के सच्चे विजयी लोगों का इतिहास लिखा जाय, तो अनेक राजाओं की जगह किसानों का, मालिकों की जगह नौकरों का, मिल मालिकों की जगह मज़दूरों का, करोड़पतियों की जगह झोंपड़ी में रहनेवालों का नाम अधिक ऊँचे स्थान पर पाया जायगा।

स्मरण रक्खो यदि तुमने कोई साम्राज्य स्थापित नहीं किया, बहुत-सा धन एकत्रित करने में सफल नहीं हुए, सरकार में उच्च स्थान नहीं पाया, समाज में लोग तुम्हारी जयजयकार नहीं करते, पत्रों में तुम्हारी प्रशंसा के पुल दिखलाई नहीं पड़ते, तो भी यदि तुमने अपना जो ध्येय स्थिर किया है, उसे प्राप्त करने के लिये तूफ़ान की तरह आगे बढ़ने की चेष्टा की है, तुम श्रम से कभी पीछे नहीं हटे, तुमने औरों का जीवन सुखी बनाने के लिये त्याग किया, अपनी खुश-तबियत से जहाँ गए वहाँ पुष्प बरसाने की तुमने चेष्टा की है, तुम्हारे शब्दों ने सदैव दूसरों के हृदय पर मलहम का काम किया है, तुमने अपने आश्रितों को सुखी बनाने की चेष्टा की है, तो फिर इसमें संदेह नहीं कि तुमने अपने जीवन का काम कर लिया है, तुमने अपनी विजय-पताका भी फहरा दी है।

संसार मे कोई भी कार्य छोटा नहीं है। क्या हम एक ग़रीब किसान या मज़दूर का काम, साम्राज्य स्थापित करनेवालों के काम से छोटा कहें? क्या हम एक मिल के मालिक का काम जो गद्दों पर पड़ा रहता है, उस मज़दूर के काम से, जो आठ घंटे अपना सिर पैर एक कर देता है, कम महत्त्व दें। यदि यह ग़रीब किसान, मज़दूर और दूसरे कर्त्तव्यशील न हों, तो साम्राज्य स्थापित करनेवालों और व्याख्यान देनेवालों को कौन पूछे? इसलिये यदि वह मोर्चा जहाँ तुम्हें लड़ना है, संसार की दृष्टि में छोटा है, यदि तुम्हारी पदवी ऐसी नहीं है, जिसमें

तुम संसार में जयजयकार करा सको, तो भी यह मत सोचो कि तुम्हारा जीवन विजय प्राप्त करने के लिये नहीं है। विजयी वही है जो अपने मोर्चे पर खड़ा हुआ अंतिम साँस तक लड़ता रहता है। क्या उसे यह सोचकर कि उस मोर्चे पर विजय प्राप्त करने से उसका नाम विजयी नेपोलियन की तरह संसार में व्याप्त न होगा, अपनी तलवार म्यान में रख उदासीन होकर बैठ जाना चाहिए? इसलिये यदि तुम्हें ऐसा स्थान मिला है, जिसे तुम ऊँचा नहीं समझते; तो भी विजय प्राप्त करने की लालसा न छोड़ो, यदि तुम छोटे स्थान पर भी विजय प्राप्त कर लोगे, तो तुम्हारा जीवन का कार्य हो जायगा।

यदि प्रयत्न करने पर भी तुम सफल न हो, तो भी कोई हानि नहीं। पराजय कोई बुरी चीज़ नहीं है। यदि वह विजय-मार्ग में अग्रसर होते हुए हो। उस कायर सैनिक से जो डर के मारे घर से नहीं निकलता, वह सैनिक अधिक वीर है जो लड़ते हुए पराजित हो जाता है और यदि जो पराजित होने पर विजय की ओर और भी अधिक उत्साह से बढ़ता है, वह निस्संदेह सच्चा विजयी है। वेंडल फिलिप्स कहता है— 'पराजय क्या है? उच्चतर ध्येय की ओर की पहिली सीढ़ी है और कुछ नहीं।' अनेक लोग विजयी केवल इसलिये हुए हैं, क्योंकि उन्हें पराजय न मिलती, तो वे महत्व-पूर्ण विजय कदापि न प्राप्त कर सकते। वीर मनुष्य में पराजय विजय प्राप्त करने के लिये और भी अधिक दृढ़ता उत्पन्न कर देती है। बहुत से मनुष्यों में भयङ्कर तकलीफ़ों में पड़कर ही विजयी भाव जागृत होते हैं। अनेक मनुष्य जो मखमलों के गद्दों और सुन्दरियों के सुरीले स्वरों में पैदा होकर बड़े होते हैं, वे ही यकायक एक समय अपने को पथ के कठिन पत्थरों और संसार के कर्कश स्वर में पाते हैं, तब ही वास्तव में उनके हृदय की शक्ति जागृत होती है, तब ही उनका विजय-कार्य आरम्भ होता है। जीवन के इस युद्ध में कितनी ही बार आँधी और तूफ़ान का ऐसा वेग आता है, जब मालूम

होता है कि बस अब जीवन-नौका उलट कर समुद्र की लहरों में विलीन हो जायगी, अब बचने का कोई चारा नहीं है; परन्तु फिर देखते हैं कि आँधी और तूफ़ान शांत हो जाता है, जीवन-नौका फिर आनन्द से चलने लगती है, हृदय खुशी से उछलने लगता है। इसलिये सच्चे सैनिक को पराजय देखकर ही न घबड़ा जाना चाहिए। यदि जीवन की इन परीक्षाओं में डटे रहे, तो फिर विजय तुम्हारे हाथ है।

नेपोलियन के बारह हज़ार सैनिक जब पचहत्तर हज़ार आस्ट्रियन सैनिकों का सामना करते हुए घबड़ा गए, तब नेपोलियन ने उनसे कहा—"मैं तुमसे बेहद अप्रसन्न हूं। तुममें न तो आज्ञा पालन की शक्ति है और न वीरत्व ही। तुमने अपने को उस स्थिति में हट जाने दिया है, जिसपर मुट्ठी भर दृढ़-प्रतिज्ञ मनुष्य एक फ़ौज को गिरफ़्तार कर सकते थे। तुम फ्रांसीसी सैनिक नहीं हो। सेनाध्यक्ष! इन लोगों के कारनामों को लिखो, यह इटली की सेना में अब नहीं हैं।" उनमें जो वीर थे उन्होंने रोते हुए कह दिया—"हमें धोखा दिया गया। दुश्मन के सिपाही लोगों के मुकाबिले एक बार और हमारी परीक्षा होनी चाहिए।" इस प्रकार के उनके उद्गारों के निकलने के बाद नेपोलियन ने उनको मौका दिया। उन सिपाहियों ने इस बार पूरे जोश के साथ युद्ध किया। उसका परिणाम उनकी विजय हुई।

पराजय प्राप्त करने पर घबड़ाओ नहीं और यदि विजय प्राप्त हो जाय, तो अभिमान में अंधे न हो जाओ। अगर तुम धन या शक्ति एकत्रित करने में सफल हुए हो, तो ग़रीब और निर्धन में लोगों को कुचलने मत लगो। यदि तुमने विजय प्राप्त की है, तो उसका उपयोग दूसरों को भी करने दो। यदि पुष्प खिलने समर्थ हुआ है, तो उसका सौंदर्य और उसका सौरभ किस लिये है? यदि उस पथ के पथिक उससे प्रमोद न कर सकें, तो फिर उसका उपयोग ही दूसरा क्या है?

यदि तुम संसार को अपने सामने झुकाने में समर्थ हुए हो, तो तुम भी उसके सामने झुकना सीखो।

जीवन-युद्ध की विजय पाशविक विजय नहीं है, निश्चय, दृढ़ता, साहस, उद्योग, प्रेम और मनुष्यता की विजय है। यदि विजयी होने पर तुम यह भूल गए तो फिर क्या कहें, तुमने किए कराए पर ही सब पानी फेर दिया। यदि तुमने धन इकट्ठा किया है, तो उसे ऐसे लोगों के उपयोग में लाओ, जिन्हें उनकी मदद की भारी आवश्यकता है; यदि तुमने ज्ञान प्राप्त किया है, तो उसका उपयोग उन अज्ञान तथा मूर्ख आदमियों को सुशिक्षित बनाने के प्रति लगाओ, जो अभी तक एकदम ही अन्धकार तथा अविद्या के गर्त में पड़े अपना समय नष्ट कर रहे हैं। यही तुम्हारी विद्या का सच्चा उपयोग है।

ॐ शांति ! शांति !! शांति !!!